# अधखिला फूल

अर्थात्

ठेठ हिन्दी में लिखी गई एक मन लुभाने-

वाली कहानी।

वेनिस का बांका, ठेठहिन्दी का ठाठ, इत्यादि उपन्यास-
ग्रंथ—रुक्मिणी परिणय, प्रद्युम्नविजय, इत्यादि
नाट्यग्रंथ—नीतिनिबंध, उपदेशकुसुम,
आदि नीतिग्रंथ—प्रेमाम्बुवारिधि,
प्रेमाम्बुप्रवाह, इत्यादि काव्य-
ग्रंथ प्रणेता निज़ामाबाद-

निवासी

## पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय

संकेत नाम "हरिऔध,, प्रणीत.

संस्क... ...पा होंगी।

पटना—"खड्ग ...विलास" प्रेस बांकीपुर।
...ने छाप कर प्रकाशित कि... ...। उस स्टार

चण्डीप्रसाद सिं... ...हस्तीभाण्ड।

१९०५

यह शब्द अवश्य सर्वसाधारण की बोलचाल में [illegible]आ कि, जिस समय यह सब शब्द मीमांसित हो रहे थे। किन्तु [illegible]—जिस शब्दों के विषय में निश्चय कर लिया है कि यह सब अवश्य[illegible] साधारण की बोलचाल में आते हैं, अतएव इस ग्रन्थ में मैं ने इन सब शब्दों का प्रयोग निस्संकोच किया है—यह तीन अक्षर के शब्द चंचल, आनंद, सुंदर, इत्यादि हैं॥

"ठेठहिन्दी का ठाठ" की भूमिका में मैं ने ठेठहिन्दी लिखने में ऐसे शुद्ध संस्कृत शब्दों का प्रयोग करना उत्तम नहीं समझा है, कि जिन के स्थान पर अपभ्रंश संस्कृत शब्द प्राप्त हो सकते हैं, और इसी लिये "कहानी ठेठ हिन्दी" में जो चंचल शब्द का प्रयोग हुआ है, उस पर मैं ने कटाक्ष किया है। किन्तु अब मैं इस विचार को समीचीन और युक्तिसंगत नहीं समझता, क्योंकि यदि इस नियम को मान कर ठेठहिन्दी लिखी जावेगी, तो उस का परिमाण विस्तृत होने के स्थान पर संकुचित हो जावेगा। जल एक शुद्ध संस्कृत शब्द है, और उसी प्रकार सर्वसाधारण का परिचित है जिस प्रकार पानी—अतएव प्रयोगस्थल पर ठेठहिन्दी लिखने में शुद्ध संस्कृत शब्द जल उसी प्रकार रखा जा सकता है, जिस प्रकार संस्कृत अपभ्रंश शब्द पानी—क्योंकि ठेठहिन्दी लिखने में विशेष विचारणीय विषय यही है कि उस में सर्वसाधारण के बोलचाल की रक्षा लिखित भाषा के नियमों का पालन करते हुये की जावे। निदान इसी और आनंद और सुन्दर का पर्य्याय-वाची हरख वो सुघर [illegible] ढले हुए [illegible] भी मैं ने "[illegible]" के उद्दे [illegible] को [illegible] श्रीकृष्ण [illegible] स वृन्दावन में [illegible] वसंत छा रह। यहां घनी घनी कुंज के वृक्षों पर वेलें [illegible] प्रास[illegible] रहीं, वरन वरन के फूल फूले हुये, तिन पर भौंरा [illegible] संस्कृत इत्यादि[illegible] रहे, आंबों की डालियों पर कोयल कुहु[illegible] भाषा होगी। परन्तु य[illegible] मोर नाच रहे, सुगंध लिये मीठी मी[illegible] सभी उस स्थल को हिन्दी [illegible] वन के न्यारी ही शोभा दे[illegible] हिन्दीभाण्ड।

कियदंश में विनाश होगा। मेरे इस कथन का यह है कि यहां सर्वसाधारण की बोलचाल का विचार छोड़ जावे—वरन इस बात की सर्वथा रक्षा करते हुए उक्त विचार में परिणत होना मेरा वक्तव्य है। जैसे चंचल शब्द है—इस का पर्य्यायवाची चुलबुला एक दूसरा शब्द है। हम ठेठहिन्दी लिखने में चंचल शब्द के प्रयोग की जहां आवश्यकता हो, वहां चुलबुला शब्द का प्रयोगकर सकते हैं। किन्तु इस शब्द का व्यवहार उतने परिमाण में नहीं हो सकता जितने परिमाण में कि चंचल शब्द का व्यवहार होता है। चुलबुली लड़की, चुलबुला घोड़ा, हम लिख सकते हैं, पर चुलबुली आंखें नहीं लिख सकते। पर चंचल शब्द का प्रयोग हम तीनों स्थानों पर एक सा कर सकते हैं—जैसे चंचल लड़की, चंचल घोड़ा, चंचल आंखें। इस लिये सर्वसाधारण के व्यवहार में चंचल शब्द रहते हुये भी यदि शुद्ध संस्कृत शब्द होने कारण हम चंचल शब्द को ठेठहिन्दी लिखने में स्थान न देंगे, और उस के स्थान पर चुलबुला शब्द ही प्रयोग करेंगे—तो इस अवस्था में हम अवश्य कियदंश में भाषा के माधुर्य्य, सौंदर्य्य, और विस्तार को नष्ट करेंगे - और यही विषय मैं ने ऊपर निरूपण किया है॥

---

"अधखिलाफूल" में ऊमस, नेह, बयार, निहोरा, सुघर, सजीला, छबीली, बापुरे, नि[illegible] [illegible]राई, सरबस, अनोखा, [illegible] [illegible], घनेरे, चेरे, [illegible] लिखे गये हैं। इन में

१—हिन्दीभाषा की सर्वस्वीकृत लेखप्रणाली ...मा कि जिन
व्याघात होगा, और स्वेच्छाचार को प्रश्रय मिलेगा। ...हैं—जिस

२—लब्धप्रतिष्ठ लेखकों की स्थापित परम्परा और ... नती
उल्लंघन होगा।

३—अप्रचलित और नवीन शब्दों का प्रयोग होगा।

४—भाषा को ग्रामीण होने का लांछन लगेगा।

मैं यह नहीं कह सकता कि उन लोगों के यह विचार कहां तक समीचीन वो सुसंगत हैं। परन्तु इस विषय में मेरी जो सम्मति है, मैं उस को यहां लिखना चाहता हूं, जिस में दूसरे भाषा-मर्म्मज्ञ विद्वानों को उक्त महाशयों की अनुमति और मेरी सम्मति पर दृष्टि रख कर उचित आलोचना करने का अवसर हस्तगत हो।

प्रथम आपत्ति यह है कि हिन्दीभाषा के सर्वस्वीकृत लेख-प्रणाली और नियम में व्याघात होगा, और स्वेच्छाचार को प्रश्रय मिलेगा। पहले यह देखना है कि इस आपत्ति के उत्थापित होने का मूल कारण क्या है? मैं इस कारण को सविस्तर नीचे लिखता हूँ—

उर्दू लिखने में जिस प्रकार लखनऊ और देहली की बोलचाल और उस भाषा के प्राचीन लेखकों की लेखप्रणाली का ध्यान रखा जाता है—हिन्दी लिखने के समय अनेकांश में वैसा नहीं किया जाता। उर्दू के समाचारपत्र कलकत्ते और बम्बई से भी निकलते हैं, परन्तु उन में मरहठी और बंगाली की छूत तक नहीं लगती, जिस रंग और स्टाइल में ढले हुए आप दिल्ली ... आक... और के उर्दू समाचारपत्रों को ... श्रीकृष्ण के प्रताप से वृन्दावन में ... वसंत ... रह। यहां घनी घनी कुंज के वृक्षों पर बेलें— ...सम्पूर्ण
प्रा... रहीं, बरन बरन के फूल फूले हुये, तिन पर भौंरों ... संस्कृत
... ग रहे, आंबों की डालियों पर कोयल कुहक... होभाषा होगी।
परन्तु ... मोर नाच रहे, सुगंध लिये मीठी मीठी ... उस स्टर
को हिन्दी ... गैर बन के न्यारी ही शोभा दे ... हिन्दीभाषा...।

...ई न देंगी। किन्तु हिन्दी भाषा के पत्र जिस प्रान्त से हैं, उन में उस प्रान्त के भाषा की छूत कुछ न कुछ अवश्य जाती है। हिन्दी भाषा के कई एक ग्रन्थकार और अपर लेखक भी इस दोष से मुक्त नहीं हैं। यदि इसी प्रान्त के अंशभूत बैसवारे के रहनेवाले अपने लेखों में "भरुका" शब्द का प्रयोग कर देते हैं, तो भोजपुरी महाशय "नीमन" शब्द का प्रयोग करने से नहीं चूकते, और बुन्देलखंडी महाशय "मरिआ" शब्द लिखने से नहीं घबराते। प्रयोजन यह कि यदि युक्त प्रान्त से कई सौ कोस दूर बम्बई और कलकत्ते में बैठे हुये पत्रसम्पादक गण किसी स्थलविशेष पर कथित उस प्रान्त का शब्द प्रयोग करने पर किम्वा वाक्यरचना में त्रुटि होने पर इस विषय में एकांश में दोषी हैं, तो इस प्रान्त में बैठे हुये लेखक वो ग्रन्थकारगण इस प्रकार की भूल करने के लिये अनेकांश में दोषभागी हैं।

इस लेख से संभव है कि किसी महाशय को कुछ भ्रम होवे, अतएव मैं इस को कुछ और स्पष्ट करके लिखना चाहता हूं। जो कुछ ऊपर लिखा गया है उस का यह भाव नहीं है कि अब तक हिन्दी भाषा के लिये कोई प्रणाली या नियम निर्धारित नहीं है, या अन्य प्रान्तों के जितने सम्पादकगण हैं और इस प्रान्त के जितने ग्रन्थकार वो लेखक हैं वह सभी भाषा लिखने में यथेच्छाचार में प्रवृत्त हैं, और सभी मनमाना अप्रयोज्य शब्दों का प्रयोग करके भाषा को कलुषित करते हैं। बरन अभिप्राय यह है कि हिन्दी ...ची उद्भावित होकर नियमबद्ध हुई है।

...त्साहित अभिनवलेखकों

बतलाये जा सकते हैं। निदान इन्हीं सब विषयों पर [illegible] कि जिन प्रथम आपत्ति उत्थापित की गई है। [illegible]—जिस

अब देखना यह है कि हिन्दी भाषा की सर्व स्वीकृत [illegible] प्रणाली और नियम क्या हैं और जमस इत्यादि शब्दों के प्रयोग से स्वेच्छाचार को प्रश्रय मिलता है या नहीं ?

हिन्दी गद्य के जन्मदाता पं० लल्लू लाल और उन्नतकर्ता बाबू हरिश्चन्द्र हैं, पं० लल्लू लाल ने हिन्दी गद्य लिखने में अधिकांश ब्रजभाषा की क्रियाओं, सर्वनामों, कारकचिन्हों, और प्रत्ययों से काम नहीं लिया। उस में उन्हों ने खड़ी बोल चाल की क्रियाओं इत्यादि का प्रयोग किया है और अपने बिचारों को अधिकतर संस्कृत शब्दों में प्रगट किया है—तथापि उस में ब्रजभाषा के शब्द इस अधिकता से भरे हुये हैं कि प्रति पृष्ठ में बीसियों दिखलाये जा सकते हैं। कहीं कहीं ब्रजभाषा की क्रिया और सर्वनाम इत्यादि भी पाये जाते हैं। पाठकगण प्रेमसागर के निम्नलिखित पेरे पर दृष्टि डालिये, और देखिये, उस में जिन शब्दों के नीचे आड़ी लकीर खिंची है—वह सब ब्रजभाषा के शब्द हैं या नहीं ?

"इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी बोले, महाराज अब मैं रितु बरनन करता हूँ—कि ऐसी ऐसी श्री कृष्णचन्द्र ने तिन में लीला करी—सो चित्त दे सुनो। प्रथम ग्रीष्म ऋतु आई, तिस ने आते ही सब संसार का सुख ले लिया, और धरती आकास को तपाय अग्नि सम किया। पर श्रीकृष्ण के प्रताप से बृन्दावन में [illegible]दा बसंत ही रहै। यहां घनी घनी कुंज के बृक्षों पर बेलें [illegible] रहीं, बरन बरन के फूल फूले हुये, तिन पर भौंरों [illegible] [illegible]ज रहे, आंबों की डालियों पर कोयल कुहुक [illegible] परन्तु [illegible]मोर नाच रहे, सुगंध लिये सीठी मीठी [illegible] की [illegible] बन के न्यारी ही शोभा दे [illegible]

छोड़ सखा समेत आपस में अनूठे २ खेल खेल रहे
इतने में कंस का पठाया ग्वाल का रूप बनाय प्रलम्ब नाम
असुर आया, जिसे देखते ही श्री कृष्णचन्द्र ने बलदेवजी को सैन
से कहा" १९ वां अध्याय।

बाबू हरिश्चन्द्र ने इस लेखप्रणाली को बहुत परिष्कृत किया
और इस वर्तमान ढंग में ढाला, और इस सौंदर्य्य और माधुर्य्य
के साथ संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया कि उन के लेखों को पढ़ते
पढ़ते मन मुग्ध हो जाता है। तथापि ब्रजभाषा के शब्दों का
प्रयोग इन की भाषा में भी अधिकता से हुआ है वरन संस्कृत
शब्दों के साथ इन्हों ने जहां ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग किया
है—उन की भाषा वहीं विशेष हृदयग्राहिणी और मधुर हुई है।
निम्नलिखित कतिपय पंक्तियां ध्यान योग्य हैं।

"क्यों जी ऐसे निठुर क्यों हो गये हो? क्या वह तुम नहीं
हो, इतने दिन पीछे मिलना, उस पर भी आंखें निगोड़ी प्यासी
ही रहैं मुंह न छिपाओ देखो यह कैसा सुन्दर नाटक का तमाशा
तुम को दिखलाता हूं। क्योंकि जब तुम अपने नेत्रों को स्थिर करके
यह तमाशा देखने लगोगे, तो मैं उतनाही अवसर पा कर तुम्हारी
भोली छबि चुप चाप देख लूंगा"

पाखण्ड बिड़म्बन नाटक का समर्पण।

पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० राधा-
चरण गोस्वामी, पं० दामोदर शास्त्री, पं० बदरीनारायण चौधरी,
पं० सदानन्द मिश्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, बाबू श्रीनिवासदास, बाब
...नाथ, बाबू तोताराम, इत्यादि सुजन 'हरिश्चन्द्री हिन्दी' को
...ष्ट करनेवाले हैं, इन लोगों ने पूर्णतया उन के दि... है
...न किया है। जब आपलोग इन महाशयों
...उस समय यह बात बहुत स्पष्ट हो
...गों का लेख यहां उद्धृत नहीं

वर्त्तमान काल के जो धुरंधर लेखक हैं उन को भी कि जिन अधिकांश में इस रंग में रंगा हुआ पावेंगे क्योंकि हिन्दी में—जिस ब्रजभाषा के शब्दों से छुटकारा नहीं मिल सकता। नतो

एक प्रकार से हम और इस विषय को सिद्ध करेंगे। हम निश्चित करना चाहते हैं कि जिन के समवाय को हम शुद्ध हिन्दी भाषा, और संस्कृत शब्दों का मेल होने पर जिस समवाय को हम साधु-भाषा कहते हैं, वह कौन से शब्द हैं। बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दीभाषा और उस की लेखप्रणाली को नियमबद्ध करने के लिये अपने 'हिन्दीभाषा' नामक ग्रंथ में बारह प्रकार की हिन्दी लिखी है, जिन का लक्षण इस प्रकार निश्चित किया है। अधिक संस्कृत शब्द प्रयुक्त हिन्दी, अल्प संस्कृतशब्दप्रयुक्त हिन्दी, शुद्ध हिन्दी, अधिक-फारसी शब्दयुक्त हिन्दी, बंगालियों की हिन्दी, अंङ्गरेजों की हिन्दी इत्यादि। अर्थात् संस्कृत, अङ्गरेजी, फारसी शब्दों के न्यूनाधिक प्रयोग और उच्चारणविभेद से हिन्दी के बारह भाग उन्हों ने किये हैं। अब यहां यह स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा के सम्पूर्ण विभागों के आधारभूत हिन्दी शब्द हैं—केवल संस्कृत और फ़ारसी इत्यादि के अल्पाधिक प्रयोग से उस के विभाग होते हैं। इस लिये यदि इन बारह विभागों पर दृष्टि डाली जावे तो यह प्रतिपन्न हो जावेगा कि हिन्दी शब्द कौन हैं।

बाबू साहब ने इन विभागों के प्रदर्शन के पहले प्रत्येक प्रकार की हिन्दी का रूप पद्य में दिखलाया भी है—इन में मुख्य ब्रजभाषा, बुंदेलखंडी, भोजपुरी, और बैसवारी, इत्यादि हैं। और वास्तव में इन प्रान्तों में जो शब्द बोले जाते हैं, वह हिन्दीभाषा के ही शब्द हैं— ऐसी दशा में यह कहा जा सकता है कि इन सम्पूर्ण प्रान्त की भाषायें अपने शुद्ध रूप में किम्बा न्यूनाधिक संस्कृत इत्यादि के शब्दों के प्रयोग से लिखी जावेंगी तो हिन्दीभाषा होंगी। परन्तु यह सभी जानते हैं कि ऐसा नहीं है, यह कभी उस प्रकार की हिन्दी न होगी कि जिस प्रकार में वर्त्तमान हिन्दीभाषा है।

यहां यह विषय विवेचनीय है कि इन में से उस ...ी भाषा कौन हो सकती है ? इस विषय की मीमांसा के ...र्थ विशेष अनुसंधान की आवश्यकता नहीं है, बाबू साहब ने जो शुद्ध हिन्दी नाम की भाषा का निदर्शन उक्त ग्रंथ में दिया है, उस पर दृष्टि रख कर विचार किया जावे तो इस विषय की मीमांसा आप हो जावेगी। क्योंकि जो शुद्ध हिन्दी का पैरा है, उस के शब्द अवश्य हिन्दी के शब्द माने जावेंगे, और उन का समवाय अवश्य हिन्दीभाषा मानी जावेगी। यहां यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इस शुद्ध हिन्दी पैरे को बाबू साहब ने लिखने योग्य हिन्दी स्वीकार की है—वह पैरा यह है।

"पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आये, क्या उस देस में बरसात नहीं होती, या किसी सौत के फन्दे में पड़ गये, कि इधर की सुध ही भूल गये। कहां तो वह प्यार की बातें कहां एक संग ऐसा भूल जाना—कि चीठी भी न भिजवाना। हा! मैं कहां जाऊं, कैसी करूं, मेरी तो ऐसी कोई मुंहबोली सहेली भी नहीं कि उस से दुखड़ा रो सुनाऊं—कुछ इधर उधर की बातों ही से जी बहलाऊं!" हिन्दीभाषा।

इस पैरे में सर्वनाम, अव्यय, कारकचिन्हों और क्रियाओं को छोड़ कर प्रीतम, अब, घर, देस, बरसात, सौत, फन्द, सुध, प्यार, एक, संग, चीठी, मुंहबोली, सहेली, दुखड़ा, बात, जी, इत्यादि शब्द आये हैं। इन में अब, घर, देस, बरसात, प्यार, एकसं... चीठी, बात, और जी ऐसे शब्द हैं जो सुख, दुख, नाक, कान, आंख, इत्यादि शब्दों के समान युक्त प्रान्त के प्रत्येक भागों में एक रस बोले जाते हैं, अतएव इन शब्दों के विषय में कुछ वक्तव्य नहीं है। देखना तो यह है कि प्रीतम (पीतम) सौत, फन्द, सुध, मुंह बोली, सहेली, और दुखड़ा, किसी प्रांतविशेष के ...हैं या क्या ? यदि इन शब्दों के विषय में थोड़ा भी विचार ...यगा, तो अवश्य कहना पड़ेगा कि यह सब शब्द ब्रज-

भाषा के हैं। अतएव यहां हम को यह मानना पड़ेगा कि जिन शुद्ध हिन्दी शब्दों के समवाय को हम हिन्दीभाषा कहते हैं—जिस समवाय में संस्कृत शब्दों का प्रयोग होने पर साधु भाषा बनती है। वह सब शब्द अब, घर, देस, बरसात, प्यार, एक, संग इत्यादि के समान जनसाधारण में प्रचलित शब्द समूह हैं, और इन शब्दों में यदि किसी प्रान्त विशेष का शब्द भाषापथ-प्रदर्शक लेखकों द्वारा परिगृहीत हुआ है तो वह व्रजभाषा है—और यही हम को सिद्ध करना था।

हम यह भी दिखलाना चाहते हैं कि क्या कारण है जो भाषा के पथप्रदर्शकों द्वारा व्रजभाषा के शब्द परिगृहीत हुये हैं? परन्तु इस विषय की मीमांसा करने के पहले हम को यह सोचना चाहिये कि भाषा में संस्कृत शब्दों के ग्रहण किये जाने का क्या कारण है? वास्तव बात यह है कि प्रान्तिक ठेठ शब्दों की अपेक्षा संस्कृत शब्द अधिक व्यापक हैं। बैसवारे, भोजपुर और बुन्देलखंड में जो ठेठ शब्द व्यवहृत हैं, राजपुताने, मध्यहिन्द और विहार में उन का समझना कठिन होगा। ऐसे ही राजपुताने, मध्यहिन्द और विहार के ठेठ शब्द, बैसवारे, भोजपुर और बुन्देलखंड में नहीं समझे जावेंगे, किन्तु इन शब्दों के स्थान पर यदि कोई संस्कृत शब्द रख दिया जावेगा, तो उस के समझने में उतनी बाधा न होगी। यह सुविधा इसलिये है कि अब भी संस्कृत का थोड़ा बहुत प्रचार भारत के प्रत्येक प्रान्त में है। इस के अतिरिक्त श्राद्ध तर्पण और संस्कारों के समय, कथावार्ता और धर्म-चर्चाओं में, व्याख्यानों और उपदेशों में, नाना प्रकार के पर्व और उत्सवों में, हम को पण्डितों का साहाय्य ग्रहण करना पड़ता है, पण्डितों का भाषण अधिकतर संस्कृत शब्दों में होता है, वह लोग समस्त क्रियाओं को संस्कृत पुस्तकों द्वारा कराते हैं—अतएव ऐसे अवसरों पर भी हमारा संस्कृत शब्दों का ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। और यह हमलोगों के लिये दूसरी सुविधा है।

व्रजभाषा शब्द संस्कृत शब्दों की अपेक्षा भी अधिक व्यापक हैं, और यही कारण उन के भाषा के सुलेखकों द्वारा परिगृहीत होने का है। व्रजभाषा शब्द संस्कृत शब्दों की अपेक्षा भी अधिक व्यापक हैं, इस विषय की सिद्धि के लिये विशेष प्रमाणसंग्रह की आवश्यकता नहीं ! सभी जानते हैं कि युक्तप्रान्त, राजपुताने, मध्यहिन्द और बिहार में संस्कृत ग्रन्थों वा श्लोकों के पढ़नेवालों की अपेक्षा रामायण, व्रजविलास, दधिलीला, दानलीला और भाषा के अपर काव्यों के पढ़नेवाले और सूरदास के पदों के गानेवाले अधिक मिलेंगे। वास्तव बात यह है कि व्रजभाषा प्रान्तिक-भाषा होने पर भी धर्मग्रन्थों वो भाषा काव्यग्रन्थों के साहाय्य से आज पांच सौ वर्ष से हिन्दी बोलनेवाले मात्र की सुपरिचित भाषा है।

जो कुछ ऊपर लिखा गया उस से स्पष्ट है कि हिन्दीभाषा व्रज-भाषा के आधार से गढ़ी गई है—या यों कहो व्रजभाषा का पुट देकर हिन्दीभाषा पर रंग चढ़ाया गया है—और यह प्रणाली प्राचीन हिन्दी सुलेखकों द्वारा बहुत सोच विचार कर युक्तिपूर्वक स्थापित हुई है। मादग्रस्त ऊमस इत्यादि शब्द व्रजभाषा के ही हैं, इस लिये यदि हिन्दीभाषा मुख्यतः ठेठ हिन्दी, लिखने में इन शब्दों का प्रयोग किया गया, तो न तो इस से सर्वस्वीकृत लेखप्रणाली और नियम का व्याघात हुआ और न स्वेच्छाचार को प्रश्रय दिया गया। अतएव प्रथम आपत्ति की अयौक्तिकता सिद्ध है। अब इस दूसरी आपत्ति पर दृष्टि डालते हैं।

दूसरी आपत्ति यह है "लब्धप्रतिष्ठ लेखकों की स्थापित परम्परा और शैली का उल्लंघन होगा" अर्थात् आपत्तिकर्ता का यह कथन है कि हिन्दीभाषा के लब्धप्रतिष्ठ पथप्रदर्शक सुलेखकों द्वारा व्रज-भाषा से जो वर्त्तमान स्टाइल की हिन्दीभाषा में गृहीत हुये हैं, तत परवर्त्ती लेखकों को भी वही शब्द ग्रहण करने चाहियें। व्रजभाषा से उन के अतिरिक्त नवीन शब्द ग्रहण करना एक स्थापित परम्परा

और बँधी हुई शैली का उल्लंघन करना है। प्रमाण
उपस्थित करते हैं, और बतलाते हैं कि उस के मुस्तनद रंगा।
(प्रामाणिक लेखकों) ने जो शब्द उर्दू में व्रजभाषा के ग्रहण
हैं, उन के परवर्त्ती लेखकों ने भी उन्हीं शब्दों को अपने गद्य वो
पद्य में स्थान दिया है—नवीन शब्द ग्रहण करने का उद्योग कदापि
नहीं किया। वरन कितने शब्दों को छोड़ भले ही दिया।

यह आपत्ति कियदंश में समुचित हो सकती है, सर्वांश में
नहीं। उर्दू का प्रमाण हिन्दी के लिये यथातथा नहीं ग्रहण किया
जा सकता। यदि उर्दूवालों ने उत्तर काल में व्रजभाषा से नवीन
शब्द ग्रहण नहीं किये, वरन कतिपय गृहीत शब्दों को छोड़ दिया
तो उस का फल क्या हुआ ? उस का फल यही हुआ कि उस में
अरबी और फ़ारसी के अप्रचलित और अत्यन्त कठोर शब्द प्रचलित
हो गये, और उस ने लखनवी उर्दू की नींव डाली। आप लखनऊ
के मुख्य शायरों की कविता उठाकर पढ़िये, देखिये उस में मिर्जादबीर के "ज़ेरे क़द में वालिदा फिर दो सबरीं है" इस मिसरे का
अनुकरण सर्वत्र है या नहीं। इस मिसरे में आप देखेंगे केवल है
उपसर्ग भाषा का है, और सम्पूर्ण शब्द फ़ारसी अरबी के हैं। किन्तु
एक शताब्दी भी नहीं बीतने पाई थी कि ऐसी उर्दूभाषा मर्मज्ञों
की दृष्टि में निंदनीय ठहराई गई, और अब पुनः देहलीवालों के
अनुकरण पर आसान उर्दू लिखने की चेष्टा हो रही है। बुद्धिमान
मनुष्य का यह कार्य्य है कि अपने आस पास होते हुये प्रत्येक कार्य्य
की हानि लाभ पर दृष्टि डाल कर सांसारिक कार्य्यों में प्रवृत्त
होवे। हमलोगों को उर्दू द्वारा जो यह शिक्षा मिली है, उस को
कदापि न भूलना चाहिये। यदि हम समय और आवश्यकतानुसार
अपर भाषा के प्रचलित शब्दों और व्रजभाषा से नूतन शब्दों को
हिन्दीभाषा में न ग्रहण करेंगे—तो अवश्य है कि एक दिन वह
भी संस्कृत शब्दों से भर जावेगी कि जिस के विषय में पीछे हम
को भी सतर्क होना पड़ेगा। फिर उर्दू हमारी जातीय भाषा नहीं

व्रजभाषा की शब्दों के ग्रहण करने में वह संकोच करे तो
है, करे सकता है, पर हिन्दी भाषा कदापि ऐसा नहीं कर सकती,
भाषा के शब्दों के लिये उस को अपना द्वार सदा उन्मुक्त रखना
चाहिये।

यहां यह तर्क किया जा सकता है कि ऐसी अवस्था में फिर कोई परम्परा और शैली नहीं स्थापित हो सकती। किन्तु अभिनिवेश चित्त से थोड़ा विचार करने पर यह तर्क इस विषय में उपस्थित नहीं किया जा सकता। भाषा की जो परम्परा और शैली नियत है यदि उस को छिन्न भिन्न कर के मैं कोई दूसरी परम्परा वो शैली नियत करने को कहता, तो अवश्य यह तर्क किया जा सकता था, परन्तु जब मैं उस की रक्षा करते हुये आवश्यकतानुसार यथा समय दो एक शब्द मात्र उस में युक्त कर लेने को कहता हूँ तो फिर इस तर्क करने का अवसर कहां रहा। मैं यह नहीं कहता, देखो को "दखो" लिखो, मैं यह नहीं कहता कि "हम आते थे" को "हमनो कां आवत रहलो" लिखो—मैं यह नहीं कहता कि हां सखी के स्थान पर "हरबेबीर" लिखो—मेरा विचार कदापि नहीं है कि खड़ी बोलचाल की जो क्रियायें, कारक के चिन्ह, और उपसर्ग इत्यादि उस में व्यवहृत होते हैं, उस में परिवर्त्तन किया जाय—मेरा यह उद्देश्य भूल कर भी नहीं है कि वाक्ययोजना और वाक्यविन्यासप्रणाली में नवीनता उत्पन्न की जावे—मैं यदि कहता हूँ तो यह कहता हूँ कि आवश्यकतानुसार कथित संज्ञा या विशेषण या इसी प्रकार का कोई दूसरा शब्द हिन्दीभाषा में व्रजभाषा से ग्रहण कर लिया जावे तो कोई क्षति नहीं। व्रजभाषा क्या, समय तो हम को यह बतलाता है कि अंगरेजी, फ़ारसी, अरबी, तुर्की, इत्यादि के वह सब शब्द भी कि जिन का प्रचलन दिन दिन देश में होता जाता है, और जिन को प्रत्येक प्रान्त में सर्व साधारण भली भांति समझते हैं, यदि हिन्दीभाषा में आवश्यकतानुसार गृहीत होते रहें, तो भी कोई क्षति नहीं।

यहां यह पूछा जा सकता है कि फिर ब्रजप्रा.
प्रान्त के अन्य प्रान्तों और मध्यहिन्द एवम् राजपुताने
के ठेठ शब्दों ने कौन सा अपराध किया है, जो उन को व
हिन्दीभाषा में स्थान न दिया जावे। वास्तव में उन शब्दों ने कोई अपराध नहीं किया है, किन्तु उन का उक्त शब्दों के इतना व्यापक न होनाही उन के स्थान न पाने का कारण है। किन्तु यदि दाल में नमक की भांति किसी आवश्यकता वश किसी स्थान विशेष पर कभी कोई शब्द प्रयुक्त हो जावे तो वह इतना गर्हित भी नहीं कहा जा सकता।

अब तीसरी आपत्ति को लीजिये—तीसरी आपत्ति यह है "अप्रचलित और नवीन शब्दों का प्रयोग होगा" यहां यह स्मरण रहे कि इस आपत्ति में अप्रचलित और नवीन शब्द का प्रयोग गद्य हिन्दी लेखों में प्रचलित वो व्यवहृत शब्दों के विचार से हुआ है। अतएव यह स्पष्ट है कि आपत्तिकर्ता पद्य में उन शब्दों के प्रचलित होने की उपेक्षा कर के यह आपत्ति उत्थापित करते हैं—परन्तु उन की यह उपेक्षा युक्तियुक्त नहीं है—क्योंकि भाषा के अंग गद्य पद्य दोनों हैं। इस के अतिरिक्त जब ऊपर कथन की गई युक्तियों से व्यापक होने के कारण वह सर्वसाधारण के अनेकांश में परिचित हैं तो लेख में उन का अप्रचलित होना उन के पहले पहल व्यवहार किये जाने का बाधक नहीं है—क्योंकि उक्त दशा में वह सर्वसाधरण के लिये असुविधा के कारण नहीं हो सकते। रहा नवीनता का झगड़ा! उस के विषय में मुझ को इतना ही वक्तव्य है, कि वर्त्तमान काल के विद्वानों और भाषातत्वविदों की अनुमति इस प्रणाली के उत्तम होने के अनुकूल है। उन का कथन है कि आव-श्यकतानुसार नवीन शब्दों का प्रयोग करने से भाषा की वृद्धि और प्रसार में प्रश्रय मिलता है, और अभिनव भावों के प्रकाश करने में सुविधा होती है। प्रमाण में अंगरेज़ी भाषा उपस्थित की जाती है, और दिखलाया जाता है कि आवश्यकतानुसार इस भाषा

ब्रजभाषा शब्द गृहीत होते रहते हैं, इस लिये पृथ्वी तल हैं, की भाषाओं में आज यह भाषा समुन्नत और वृद्धि पर है। -सूत्र से थोड़े दिन हुये एक विद्वान ने उर्दू की वृद्धि और समुन्नत होने की सूचना दी है। प्रत्युत यह स्वीकार किया जा सकता है कि भाषा में नवीन शब्द ग्रहण की प्रणाली निन्दनीय नहीं है वरन उत्तम है।

चौथी आपत्ति कुछपुष्ट है, और वह यह है, "भाषा को ग्रामीण होनेका लांछन लगेगा" यहां यह विचार्य्य है कि भाषा को ग्रामीण नहोनेकी चेष्टा क्यों की जाती है? और किसी परमावश्यक स्थल पर दो चार ग्राम्य शब्दों के आजाने से ही भाषा ग्रामीण हो जाती है या क्या? जो शिष्टसमाज की बोलचाल की भाषा होती है, लिखित भाषा वही हुआ करती है, कारण इस का यह है कि वह सब प्रकारसुसम्पन्न और पूर्ण होती है, इस लिये किसी विषय के लिपिबद्ध करने में विद्वानों द्वारा आदर उसी का होता है। और ऐसी दशा में भाषा को ग्रामीण न होने देने की चेष्टा स्वाभाविक है। किन्तु किसी परमावश्यक स्थल पर दो चार ग्राम्य शब्दों के प्रयोग से ही भाषा ग्रामीण नहीं हो सकती—भाषा ग्रामीण उसी समय होगी—जब हम शिष्टसमाज में गृहीत शब्दों को अनेकांश में न ग्रहण करेंगे—किम्बा शब्दों के लिखने में उन के उच्चारण और व्यवहार का ध्यान न रक्खेंगे। अर्थात् छत को छात, भूँकने को भूसने, और बाल को बार इत्यादि एवम् पांव के स्थान पर गोड़—नाक के स्थान पर नकुरा—और समय वो बेला के स्थान पर बिरिया इत्यादि लिखेंगे। यह भी स्मरण रहे के जैसे कविता में संकीर्ण स्थल पर—कोई भाव व्यञ्जक मधुर ग्रामीण शब्द—कवियों द्वारा परिगृहीत हो जाता है और वह उतना निन्दनीय नहीं समझा जाता, प्रत्युत पद्य की शोभा ही वर्द्धन करता है। उसी प्रकार किसी स्थानविशेष पर किसी मुख्य कारण से यदि गद्य में भी कोई मधुर ग्रामीण शब्द

हिन्दीभाषा के सुप्रसिद्ध लेखक पं॰ ...
एम॰ ए॰ डिप्टीकलक्टर ज़िला बस्ती ने अपने १७ ...
के पत्र में, और स्वनामख्यात प्रसिद्ध पुरुष पं॰ महाराज ...
शिवपुरी डिप्टीकलक्टर मथुरा ने अपने ७ मई सन् १८०...
चीठी में, उक्त ग्रन्थ के विषय में अपनी उत्तम अनुमति प्रगट की है, अतएव मैं इन महाशयों को भी अनेक धन्यवाद प्रदान करता हूँ। खेद है कि भूमिका के विस्तारभय से मैं उन पत्रों को यहां उद्धृत नहीं कर सकता॥

मैं स्वनामधन्यपुरुष आनरेबुल श्रीयुत पं॰ मदनमोहन मालवीय महाशय का भी बाधित हूँ और उन को भी उन शब्दों के लिये—जिन को कि उन्हों ने सेवा में उपस्थित होने के समय उक्त ग्रन्थ के विषय में मुझ से कहे थे—विनीतभाव से अनेक धन्यवाद देता हूँ॥

---

"अधखिलाफूल" नामक इस दूसरे ग्रंथ को भी मैं ने ठेठ हिन्दी में ही लिखा है, यह मैं पहले कह चुका हूँ। ठेठहिन्

---

दलावली ११ रत्नावली १२ कादम्बरी १३ हितोपदेश १४ बादश दर्पण १५ दुःखिनीबाला १६ प्राकृतिक भूगोल चन्द्रिका १७ भा वती १८ स्त्रीशिक्षासुबोधिनी १९ वनिताबुद्धिप्र ... ती २ धीर प्रेममोहिनी नाटक २१ श्री नागरी को ... क॥

पद्यग्रन्थ—१ बिहारी सतसई २ सुखसार ... लग अपनी।
४ सूरसागर ५ रामचरितमानस ६ रा ... बैठे हैं।
८ हमीरहठ ९ जगतविनोद १० र ... अपने पीडर॥
... २ संगीतशाकुंतल १३ अनुरागबा ... आवेगा फबन॥
... र का बीजक १७ दादू की ... नज़र आवेगी।
... अनुरागकाव्य २० पृथ्वीर ... की हवाई मिनन॥

ब्रजभाषा-मर उस की उपपत्ति क्या है ? यह सब बातें मैं
हैं, औ "का ठाठ" की भूमिका में लिख दी हैं, अतएव
उन को लिख कर मैं पिष्टपेषण नहीं करना चाहता।
! यह अवश्य है कि जो परिभाषा मैं ने ठेठहिन्दी की उक्त ग्रन्थ
में लिखी है, उस के विषय में मेरे कतिपय भाषामर्मज्ञ मित्र
अपनी कुछ स्वतन्त्र अनुमति रखते हैं—किन्तु उन लोगों की यह
स्वतन्त्र अनुमति भी एक दूसरे से विभिन्न है। वह फ़ारसी, अरबी,
तुरकी, अङ्गरेजी, और फ्रेंच शब्द जो टूट फूट कर सर्वथा हिन्दी
भाषा के आकार में परिणत हो गये हैं ठेठहिन्दी का शब्द कह-
लाने योग्य हैं या नहीं ? ठेठहिन्दी लिखने में उन का उसी आकार
में प्रयोग होगा जैसा कि वह सर्वसाधारण द्वारा बोले जाते हैं,
या उन के शुद्ध रूप का ? यदि ऐसे शब्दों का प्रयोग ठेठहिन्दी की
पुस्तकों में होगा, तो किस नियम के साथ और कैसे स्थल पर
होगा ? यह सब बातें अवश्य बिचारणीय हैं। और यदि समय हाथ
या, तो मैं अपने एक दूसरे उपन्यास की भूमिका में—जिस को
स्वयं प्रवृत्त हो कर ऐसी ही एक प्रकार की भाषा में लिख रहा
—इन सब बातों को यथासामर्थ्य मीमांसा करूंगा। इस समय
स विषय में कुछ नहीं लिखना चाहता॥

जिस समय मैंने 'ठेठहिन्दी का ठाठ' लिखा था उस समय साधारण
ों को बोलचाल पर बहुत दृष्टि रखता था। और जिन संस्कृत
न रक्षण। अथ रण से साधारण ग्रामीण को मैं ने बोलचाल के
बार इत्यादि एवम् ा था, उन्हीं शुद्ध संस्कृत शब्दों का प्रयोग मैं
नकुरा—और समय किन्तु यह शुद्ध संस्कृत शब्द सब अधिकतर व
यह भी स्मरण रहे कि ख, सुख इत्यादि। मैं ने उस ग्रन्थ में ाता
व्यञ्जक मधुर ग्रामीण शब्द का प्रयोग भी किया है, किन्तु की
है और वह उतना निन्दनीय ब्द इस प्रकार के उस में आये हैं शिप पर
शोभा ही वर्द्धन करता है। उ तक मैं ने कतिपय तीन ा शब्द
किसी मुख्य कारण से यदि गद्य स्वित नहीं कर लिया

प्रयुक्त हो जावे, तो केवल इसी कारण से ग्रंथ को
गंवारी होने का लांछन नहीं लग सकता।

उर्दू भाषा छील छाल कर बहुत ठीक की गई है इस भाषा के गद्य वो पद्य में जो शब्द आते हैं, वह बहुत ही बीछे बराये हुये शब्द हैं, तथापि व्रजभाषा के अनेक ग्राम्य शब्द अब तक उस की शोभा वर्द्धन कर रहे हैं। पाठकगण! नीचे के शेरों को देखिये, इन में जिन शब्दों के नीचे आड़ी लकीर खिंची हुई है, वह सब विशेष ध्यान देने योग्य हैं। यतः उर्दू के गद्य वो पद्य दोनों की भाषा एक ही है, अतएव मैं ने गद्य का कोई पैरा न उठाकर आप लोगों के मनोरंजन के ध्यान से कतिपय पद्यों को ही उठाया है।

दर्द—अय दर्द बहुत किया परेखा हम ने ।
 देखा तो अजब जहां का लेखा हम ने ॥
 बीनाई न थी तो देखते थे सब कुछ ।
 जब आंख खुली तो कुछ न देखा हम ने ॥

नसीम—बादे सहरी चली जो सन से ।
 वह शमा सिधारी अंजुमन से ॥

मोमिन—उम्र मारी तो कटी इश्क़ बुतांमें मोमिन ।
 आखिरी वक़्त में क्या खाक मुसल्मां होंगे ॥

सौदा—जैसी सजधज थी गरेबोच हे मायल गुलको ।
 वैसी हो इत्र की बू वैसी ही सोंधे की महंक ॥

इन्शा—न छेड़ अय नगहते बादे बहारी राह लग अपनी ।
 तुझे अठखेलियां सूझी है हम बेज़ार बैठे हैं ।
 कोई शबनम मे छिड़क बालोंप अपने पोडर ॥
 कुरसिये नाज़प जल्वा को दिखावेगा फबन ॥
 अक्स नज़्ज़ारा को आंखों में नज़र आवेगी ।
 बाग़ में नरगिसे शोहला की फबाई चितवन ॥

ब्रजभाषा रखा, लेखा, सिधारो, सारो, सजधज, सोंधे, अठखेलियां, हैं, औ, चितवन, शब्दों के ग्राम्य होने में सन्देह हो, तो यह तो सभी स्वीकार करेंगे कि यह ठेठ ब्रजभाषा शब्द हैं। और जब इन ठेठ शब्दों के प्रयोग से दर्द इत्यादि उर्दू के लब्धप्रतिष्ठ शायरों को और निगोड़ी, सौत, फन्द, इत्यादि ऐसे ही शब्दों के प्रयोग से बाबू हरिश्चन्द्र इत्यादि सुलेखकों और पथप्रदर्शकों को भाषा को ग्रामीण होने का दोष नहीं लगा। तो आशा है कि मेरे ऊमस, नेह, निहोरा, इत्यादि शब्दों के प्रयोग से 'अधखिला फूल' और 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' की भाषा को भी ग्रामीण होने का दोष नहीं लगेगा, क्योंकि यह सब शब्द भी उसी टाइप के हैं। मुख्यतः उस अवस्था में जब यह दोनों पुस्तकें ठेठहिन्दी में बिना अन्य भाषा और संस्कृत का कोई अप्रचलित शब्द प्रयोग किये लिखी गयी हैं।

हम यथासामर्थ्य चारों आपत्तियों की अयौक्तिकता सिद्ध कर चुके, साथही उस आशंका का भी निरसन हुआ, जो कि आपत्तियों के उत्थापन का कारण थी। संभव है कि इस विषय में भाषा-मर्म्मज्ञों की कुछ और सम्मति होवे, किन्तु अब मुझ को कुछ वक्तव्य नहीं है।

इतना लिखने के पश्चात भी यदि उन शब्दों के विषय में किसी महाशय को विशेष तर्क वितर्क होवे, तो मेरी प्रार्थना यह है कि वह गंभीर गवेषणा से काम लें, उस समय उन को ऊमस, अनोखा, सजीला, का व्यवहार हिन्दी को कौन कहे उर्दू गद्य में भी मिलेगा। नेह, बयार, निहोरा, सुघर, छबीली, बापुरे, सरबस, निवारती, निकाई, सुघराई, का प्रयोग भी वह लब्धप्रतिष्ठ हिन्दीलेखकों के गद्य ग्रन्थों में पावेंगे। हां! नेरे, घनेरे, चेरे, शब्द उन को कहीं गद्यग्रन्थों में न मिलेंगे, मैं ने भी उन को गद्य में स्थान नहीं दिया है, यह शब्द पद्य ही में आये हैं। गद्य से पद्य में सर्वत्र कुछ स्वतंत्रता होती है। मैं ग्रन्थों से वाक्यों को उद्धृत करके अपने कथन

को पुष्टि भी करता, किन्तु इस विषय में ऊपर
लिखने पश्चात मैंने व्यर्थ इस भूमिका के कलेवर को वृ।८
नहीं समझा । ंश।

जो कुछ मैंने अभी कतिपय पंक्तियों में लिखा है, यदि पहले ही मैं इस को लिख देता, तो इस विषय में विस्तृत लेख लिखने की आवश्यकता न होती। क्योंकि जब लब्धप्रतिष्ठ लेखकों द्वारा उन का व्यवहार सिद्ध है, तो फिर तर्क को स्थान कहां रहा। किन्तु ऐसी दशा में किसी सिद्धान्त पर उपनीत होना कठिन होता, और इसी लिये मुझ को विस्तृत लेख लिखना पड़ा।

इस अवसर पर और एक विषय की मीमांसा आवश्यक है वह यह कि इसतिरी, मरम, सबद, इन्दर, सराप, अमरित, सुकुआर, इत्यादि शब्द जो अशुद्ध रूप में व्यवहृत हुये हैं, क्या यह प्रणाली ठीक है? शब्दों को तोड़ मरोड़ कर रखने की अपेक्षा उन का शुद्ध रूप में व्यवहार करना क्या उत्तम नहीं है? जहां तक मैं समझता हूँ, कह सकता हूं कि व्यवहारस्रोत में पड़ कर टेढ़े मेढ़े शब्द-प्रस्तर-समूह घिसते घिसते जो सुन्दर और सुडौल आकार में परिणत हो गये हैं, फिर उन को उसी पूर्वरूप में लाने की चेष्टा व्यर्थ है। आजकल की हिन्दीभाषा में शुद्ध संस्कृत शब्द अधिकतर व्यवहृत होते हैं, और प्रायः धुरंधर लेखकों की चेष्टा शुद्ध संस्कृत शब्दसमूह व्यवहार करने की ओर अधिक देखी जाती है—किन्तु शुद्ध संस्कृत शब्दों के स्थान पर व्यवहृत अपभ्रंश संस्कृत शब्दों का प्रयोग मैं उस से उत्तम समझता हूं। आंख, नाक, कान, मुंह, दूध, दही, के स्थान पर लिखने के समय हम इन का शुद्ध रूप अक्षि, नासिका, कर्ण, मुख, दुग्ध, दधि, इत्यादि व्यवहार कर सकते हैं, किन्तु भाषा इस से कर्कश हो जावेगी, जन साधारण की बोधगम्य न होगी, साथ ही उस का हिन्दीपन लोप हो जावेगा। किसी भाषा के लिखने की चेष्टा करने पर यथासाध्य उस को उन्हीं शब्दों में लिखना चाहिये

बोली जाती होवे—अन्यथा वह उन्नत कदापि न
ब्रजभाष... यह स्वीकार करता हूं कि लिखित भाषा और कथित
हैं, ... में सर्वदा कुछ न कुछ अन्तर अवश्य हुआ करता है—परन्तु
यह अन्तर इतना न होना चाहिये जिस से कि आप उस के रूप
पहचानने में भी कुंठित होवें।

यदि कोई वादग्रस्त विषय लिखना होवे, किम्वा कोई गूढ़ मीमांसा करनी हो, अथवा मनोभावव्यञ्जक कोई उपयुक्त शब्द भाषा में न प्राप्त होता होवे—तो हम संस्कृत शब्दों से हिन्दी लिखने के समय अवश्य काम ले सकते हैं—ऐसी अवस्था में हम को कोई दोषभागी भी न बनावेगा। किन्तु यदि हम कोई साधारण बात लिखना चाहते हैं, और भाषा के भंडार से हम को आवश्यकतानुसार शब्द प्राप्त हो सकते हैं, और हम फिर भी संस्कृत शब्दों की तृष्णा नहीं त्यागते हैं, और दौड़ कर भाषा के चिकने कोमल शब्दों को संस्कृत का पूर्वरूप देने का ही आग्रह करते हैं, तो अवश्य हम दोषभागी हैं।

यदि यह कहा जावे "कि आंख, नाक, कान, इत्यादि जो अपभ्रंश संस्कृत शब्द हैं वह वास्तव में जनसाधारण द्वारा ऐसे ही बोले जाते हैं, अतएव उन को शुद्ध कर के लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसतिरी इत्यादि को इस लिये शुद्धरूप में लिखने को कहा जाता है कि वास्तव में उन का जन साधारण में इस रूप में व्यवहार नहीं है—यह सब सर्वथा बने हुये और कल्पित अवगत होते हैं।" तो हम कहेंगे कि यदि यह विचार सत्य है, तो हम को भी कोई विरोध नहीं है, मैं भी उसी रूप में शब्द के व्यवहार का पक्षपाती हूं कि जिस रूप में वह सर्वसाधारण द्वारा बोला जाता है, यदि सर्वसाधारण द्वारा वह उस रूप में नहीं बोला जाता है कि जिस रूप में वह लिखा गया है, तो अवश्य त्याज्य है। किन्तु वक्तव्य यह है कि क्या यह विचार सत्य है? क्या सर्वसाधारण इसतिरी को स्त्री सरग को स्वर्ग, सबद को शब्द, इन्दर को

इन्द्र, सराप को शाप, अमरित को अमृत, और सुकु-
मार उच्चारण करते हैं ? कदापि नहीं, वरन उन का उच्चा-
रण है, जैसा कि लिखा गया है। उच्चारण के विषय में इन शब्दों पर
आक्षेप कदापि नहीं हो सकता, हां ! यह कहा जा सकता है कि
इस रूप में किसी ग्रंथ में यह शब्द नहीं लिये गये, परन्तु मैं इस
बात को भी नहीं मान सकता। अपने " सत्यहरिश्चन्द्र " नाटक में
शैव्याविलाप में बाबू हरिश्चन्द्र ने सुकुमार के स्थान पर सुकुआर
शब्द का प्रयोग किया है। उर्दू में बराबर इन्द्र के स्थान पर इन्दर,
अमृत के स्थान अमरित व्यवहार होता है। कविता में अनेक स्थान
पर स्वर्ग के स्थान पर सरग, शब्द के स्थान पर सबद, और शाप
के स्थान पर सराप आया है। हां ! जहां तक मुझ को स्मरण है
स्त्री के स्थान पर इसतिरी कदाचित पहले पहल लिखा गया है।
परन्तु स्मरण रहे कि यदि इस का उच्चारण इस रूप में होता है, तो
मैं ने पहले पहल उस को यह रूप देकर अनुचित नहीं किया है,
वरन उस अधिकार से काम लिया है, जिस पर प्रत्येक ग्रंथकार और
लेखक का उचित स्वत्व है।

मैं उच्चारण को आदर्श मान कर यतः कार्य्य करने का पूर्ण
पक्षपाती हूं, अतएव मैं ने अपने अनुभव पर निर्भर करके उक्त दोनों
ग्रंथों में प्रायः शुद्ध संस्कृत शब्दों के स्थान पर बोल चाल में व्यवहृत
अपभ्रंश संस्कृत शब्दों के व्यवहार की चेष्टा की है, और उन को
उसी आकार और रूप में लिखा है कि जिस आकार वो रूप में
वह व्यवहृत होते हैं। या यों समझिये ठेठ हिन्दी में ग्रन्थ लिखने
के लिये कटिबद्ध होकर मुझ को विवशतानिबन्धन ऐसा करना
पड़ा है। किन्तु मेरा यह पक्षपात सर्वथा निर्दोष है या नहीं, यह
मैं नहीं कह सकता। मैंने ऊपर सुकुआर वो इन्दर इत्यादि शब्दों
के व्यवहार का पुस्तकों में पता दिया है, परन्तु इस पता देने से
मेरा यह अभिप्राय नहीं है, कि किसी पुस्तक में इस प्रकार के
किसी शब्द का प्रयोग मिलने पर ही उस शब्द का उस प्रकार हम

ब्रजभाष ना चाहिये। वरन केवल निदर्शन की भांति मैंने हैं, त्रो। का व्यवहार पुस्तकों में बतलाया है, नहीं तो मेरा सिद्धान्त है कि प्रत्येक लेखक को इस प्रकार का प्रयोग करने का अधिकार है। किन्तु उस अवस्था में जब कि वह निश्चय कर लेवे कि उस शब्द का व्यवहार सर्वसाधारण में उसी प्रकार होता है।

स्मरण रहे कि यह प्रयोग देखो के 'दखो' लिखने समान नहीं है, कारण इस का यह है कि देखो का व्यवहार अधिकतर प्रान्तों में इसी रूप में होता है—हिन्दी और उर्दू के सुलेखकों ने भी इस को इसी रूप में लिखा है—अतएव इन बातों पर दृष्टि देकर इस का इसी रूप में लिखा जाना सुसंगत है। किसी एक प्रान्त के उच्चारण का आग्रह करके उस को 'दखो' लिखना ऐसा ही अनुचित है, जैसा सर्वसम्मत और भाषापरिगृहीत 'नाक' शब्द के स्थान पर किसी प्रान्तविशेष के उच्चारण का आग्रह करके 'नकुरा' लिखना असंगत है।

इस ढंग से शब्दप्रयोग करते प्राचीन हिन्दी लेखकों को भी देखा जाता है, प्रमाण में मैं बाबू हरिश्चन्द्र के सत्यहरिश्चन्द्र नाटक से एक पैरा नीचे उद्धृत करता हूं। इस पैरे में जिन शब्दों के नीचे आड़ी लकीर है, वह सब शब्द ध्यान देने योग्य हैं।

"हाय! यह बिपत का समुद्र कहां से उमड़ पड़ा, अरे! छलिया मुझे छल कर कहां भाग गया! (देखकर) अरे आयुस की रेखा तो इतनी लम्बी है फिर अभी से यह बज्र कहां से टूट पड़ा। अरे ऐसा सुन्दर मुंह बड़ी बड़ी आंख, लम्बी २ भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब सा रंग। हाय! मरने के तुझ में कौन से लच्छन थे जो भगवान ने तुझे मार डाला! हाय! लाल! अरे बड़े बड़े जोतसी गुनीलोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा, बहुत दिन जीयेगा, सो सब झूठ निकला! हाय! पोथी, पत्रा, पूजा, पाठ, दान, जप, होम, कुछ भी काम

न आया ! हाय ! तुम्हारे बाप का कठिन पुत्र भी तु..
न भया और तुम चल बसे ! हाय ! "

...गा।
ग्रैव्यावि...

मैंने ऊपर जिस नियम का वर्णन किया है, उस नियम के अनुसार पांति को पांती, पवन को पौन, जाति को जात, गंभीर को गँभीर, भांति को भांत, कारण को कारन, पुरुष को पुरुख और स्वर को सुर, लिखा जाना चाहिये। और अधिकांश यह शब्द इसी रूप में लिखे हुये भी हैं, किन्तु कंपोज़िटर की भूल से कहीं कहीं यह शब्द शुद्ध रूप में भी लिख गये हैं। इस से यह न समझना चाहिये कि वह मेरे द्वारा भी इसी प्रकार लिखे गये हैं—और मैंने सर्वसाधारण के उच्चारण का ध्यान करके भी उन को इस रूप में लिखा है। वरन इस को कंपोज़िटर की भूल समझना चाहिये। और ऐसे ही इस प्रकार के और शब्दों के विषय में भी जानना चाहिये। जिन पृष्ठ पंक्तियों में कंपोज़िटर से ऐसी भूल हुई है, उन में से कुछ पृष्ट पंक्तियों को मैं नीचे लिख भी देता हूँ।

| पृष्ट | पंक्ति | शब्द | पृष्ट | पंक्ति | शब्द | पृष्ट | पंक्ति | शब्द |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ४ | १० | पांति | १८ | १३ | गति | ८६ | १८ | स्वर |
| ११ | ८ | पवन | ३८ | १५ | गंभीर | १०० | ८ | कारण |
| १६ | १८ | जाति | ४२ | १२ | भांति | ११५ }<br>११६ } | १० }<br>२५ } | पुरुष |

जैसे ब्रजभाषा शब्दों के व्यवहार के विषय में लोगों ने तर्क किये, उसी प्रकार कई महाशयों ने कतिपय शब्दों के स्त्रीलिङ्ग वो पुल्लिङ्ग होने के विषय में भी वाद किया। इन में मुख्य शब्द उमंग, चाल चलन, और चर्चा हैं। मैं इन शब्दों के विषय में भी कुछ लिखना चाहता हूँ। लिंगविभेद का झगड़ा बहुत दिनों से उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं में चला आता है उर्दू ही में कुछ लोग एक शब्द को पुल्लिङ्ग और दूसरे स्त्रीलिङ्ग लिखते हैं।

ब्रजभाषा हैं, और [illegible]ार देहलवी उर्दू को मिला कर देखिये उस समय [illegible]ा मेरे कथन के कितने ही प्रमाण मिलेंगे। हिन्दी भाषा में भी देखाजाता है कि बाबू हरिश्चन्द्र और उन के परवर्त्ती लेखकों के अनुसरण करनेवाले तो पुस्तक और आत्मा को स्त्रीलिंग लिखते और पंडितऊ हिन्दी लिखनेवाले इन्हीं शब्दों को पुल्लिङ्ग लिखते हैं ऐसाही विभेद आप वायु और पवन शब्द में देखेंगे, इन शब्दों को कोई पुल्लिङ्ग लिखता है, और कोई स्त्रीलिंग। ऐसे ही और शब्द भी बतलाये जा सकते हैं। किन्तु इस विवाद को छोड़ कर मुझे वादग्रस्त शब्दों को ही मीमांसा करनी है, अतएव मैं इसी कार्य्य में प्रवृत्त होता हूँ॥

पहले मैं उमंग शब्द को लेता हूँ—और देखता हूँ कि हिन्दी भाषा के सुलेखकों ने इस को स्त्रीलिंग लिखा है वा पुल्लिङ्ग। सब से प्रथम मैं बाबू हरिश्चन्द्र के ग्रन्थ से ही प्रमाण उद्धृत करता हूं। उन के कर्पूरमंजरी सट्टक के पृष्ट २३ में यह वाक्य है—

"राजा—परस्पर सहज स्नेह अनुराग के उमंगों का बढ़ना, अनेक रसों का अनुभव, संयोग का विशेष सुख, संगीत साहित्य और सुख की सामग्री मात्र को सुहावना कर देना, और स्वर्ग का पृथ्वी पर अनुभव करना।"

बाबू राधाकृष्ण दास हिन्दी के वर्त्तमान सुलेखकों में हैं, वह बाबू हरिश्चन्द्र की जीवनी के पृष्ठ १६ में लिखते हैं—

"बाबू हर्षचन्द के बाल्यकाल ही में इन के पूजनीय पिता ने परलोक प्राप्त किया। लोगों ने इन के उमंग का अच्छा अवसर उपस्थित देख इन्हें रायरत्नचन्द बहादुर से लड़ा दिया।"

कविवर भिखारी दास भाषा के प्रसिद्ध कवियों में हैं, उन के शृङ्गार निर्णय के पृष्ट ३८ में यह सवैया लिखी हुई है॥
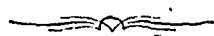
सवैया।

समीप निकुंजन कुंजविहारी गये लखि सांझ पगे रसरंग।
दूते बड़ घोस में आइकै धाय नवेली को बैठी लगाइ उछंग॥
उड़ीं तहँ दास बसी चिरियां उड़िगो तिय को चित वाहि के संग।
बिछोह ते बूँद गिरे अँसुआ के सु वाके गुने गये प्रेम-उमंग॥ १॥

हिन्दीकोष के पृष्ठ ३० में यह शब्द अर्थ के साथ इस प्रकार लिखा हुआ है, कोष्ठगत 'प' से उसी ग्रंथ के आदि पृष्ठ की सूचना के अनुसार पुल्लिङ्ग समझना चाहिये।

उमङ्ग (प) मग्नता, धुन, तृष्णा।

ऊपर जो प्रमाण संग्रह किये गये उन से स्पष्ट है कि हिन्दी में "उमङ्ग" शब्द को पुल्लिङ्ग लिखते हैं।

अब कुछ उर्दू के शायरों की कविता नीचे लिखता हूं पाठकगण देखें इस में 'उमंग' शब्द का व्यवहार 'स्त्रीलिंग' की भांति हुआ है।

अकबर—साम्हने थीं लेडियां ने माह वश जादू नज़र।
यां जवानी की उमंग वो उन को आशिक की तलाश॥

नैरंग—सहरा को खींचती है दिलेज़ार की उमंग।
बैठा रहे जो घर में यह किस को क़रार है॥

अब चालचलन को देखिये।

सुप्रसिद्ध भारतमित्र पत्र के वर्त्तमान संपादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त हिन्दी और उर्दू दोनों पर समान अधिकार रखते हैं, अतएव इन्हीं का लेख हिन्दी के विषय में प्रमाणस्वरूप यहां उद्धृत किया जाता है; क्योंकि केवल हिन्दी जाननेवाले की अपेक्षा हिन्दी और उर्दू दोनों जाननेवाले का लेख विशेष पुष्टि का कारण होगा—

"जज्ज—अगर तुम नहीं मानोगे तो मैं सरकार में तुम्हारी चाल चलन की रिपोर्ट करूंगा"

एक दूसरी ठौर—

"अगर एक ज़िलाजज्ज एक बारिष्टर को गाली दे तो बारिष्टर जज्ज की चालचलन पर रिमार्क कर सकता है ?"

भारतमित्र ४ जून सन् १९०४ ईस्वी कालम चौथा पंक्ति ८०, ८१, वो ११५, ११६

मौलवी हसन अली साहब मुहम्मदन मिशनरी अपने लेकचरनो नामक प्रबंध में लिखते हैं—

"गो इन्सान पूरी लियाक़त न रखता हो, और दौलत में भी कम हो, लेकिन अगर उस का चाल चलन उम्दा और शाइस्ता है, तो उस की क़दर और मंज़िलत हमेशा बढ़ती रहेगी."—

मुअल्लिमुत्तहज़ीब पृष्ठ ७२

सर सय्यद अहमद साहब "अपनी मदद आप" शीर्षक प्रबंध के आठवें टुकड़े में लिखते हैं—

"लार्ड बेकन का निहायत उम्दा कौल है—कि इल्म से अमल नहीं आता, इल्म को अमल में लाना इल्म से बाहर वो इल्म से बरतर है, इल्म की निस्बत अमल और सवानेह उमरी की निस्बत उम्दा चाल चलन आदमी को ज्यादा मुअज्ज़िज़ और क़ाबिल अदब बनाता है—"

मुअल्लिमुत्तहज़ीब पृष्ठ ९१।

ऊपर जो वाक्य उद्धृत किये गये उन के देखने से पाया जाता है कि हिन्दीवाले चाल चलन को स्त्रीलिंग लिखते हैं—किन्तु उर्दू वाले इसी शब्द का प्रयोग पुल्लिङ्ग की भांत करते हैं।

अब चर्चा की चर्चा हमें और करनी है। सब से पहले भारतेन्दु जी को एक सवैया हम नीचे लिखते हैं।

सवैया।

जग जानत कौन है प्रेम बिथा केहि सों चरचा या बियोग की कीजिये। पुनि को कही मानै कहा समझै कोऊ क्यों बिन बात की रारहिं लीजिये॥ नित जो हरिचन्द जू बीते सहैं बकि कै जग क्यों परतीतहिं छीजिये। सब पूछत मौन क्यों बैठि रही पिय प्यारे कहा इन्हें उत्तर दीजिये॥

सुन्दरीतिलक पृष्ठ २२६ में सवैया लिखो है।

सवैया।

पीचलिबे की चली चरचा सुनि चंदमुखी चितई दृगकोरन।
पीरो परो तुरतै मुख पै बिलखो बनि व्याकुल सैन सकोरन॥
को बरजै अलि कासों कहों मन झूलत नेह ज्यों लाज झकोरन।
मोती से पोह रहे अँसुआ न गिरे न फिरे बरुनीन की कोरन॥

उर्दू कवियों की भी दो कवितायें देखिये।

अकबर—अकबर से आज हज़रते वायज़ ने यों कहा।

चरचा है जा बजा तेरे हालेतबाह का॥

कश्चित—दुनिये के जो मज़े हैं हरगिज़ यह कम न होंगे।

चरचा यही रहेगा अफ़सोस हम न होंगे॥

ऊपर की कविताओं के देखने से स्पष्ट है कि भाषा में चर्चा को स्त्रीलिंग लिखते हैं और उर्दूवाले उस को पुल्लिङ्ग बांधते हैं।

अब यहां उलझन यह आन पड़ी कि जब भाषा और उर्दू लिखनेवालों के प्रयोग में इस प्रकार प्रभेद है—तो इन शब्दों के स्त्रीलिंग, पुल्लिङ्ग की मीमांसा कैसे हो। वास्तव बात यह है कि इस प्रकार के शब्दों के लिंग की मीमांसा बहुत कठिन है। ऐसे

अवसर पर हमारा कर्तव्य यही है कि जब हम भाषा लिखें तो ऐसे शब्दों के प्रयोग के विषय में भाषावालों का मार्ग ग्रहण करें, और जब उर्दू लिखें तो उर्दूवालों का। अन्यथा हमारा लेख पुल्लिंग, स्त्रीलिंग के दोष से मुक्त न हो सकेगा।

यह हम स्वीकार करेंगे कि भाषा लिखनेवालों में भी कोई उर्दूवालों के समान चाल चलन को पुल्लिंग लिखते हैं, परन्तु अल्प। अधिकतर भाषा लिखनेवाले प्राचीन हिन्दी लेखकों का ही अनुसरण करते हैं। हां, 'उमंग, की बात निराली है, भाषागद्य पद्य लिखनेवालों में भी अधिक लोग इस को स्त्रीलिंग ही लिखते हैं। स्वयं बाबू हरिश्चन्द्र ने चन्द्रावली नाटिका के पृष्ठ २५ में इस को स्त्रीलिंग लिखा है—स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्र इस को सदा स्त्रीलिंग ही लिखते थे। अतएव यदि व्यवहार के आधिक्य पर विचार किया जावे तो यह अवश्य कहना पड़ेगा कि इस शब्द का स्त्रीलिंग लिखा जाना ही अच्छा है। इसी प्रकार आधिक्य पर दृष्टि डाल कर उन शब्दों की भी मीमांसा करलेनी चाहिये, कि जो भाषा में भी दो प्रकार से लिखे जाते हैं—अर्थात् भाषा ही में जिन को कोई स्त्रीलिंग और कोई पुल्लिङ्ग लिखता है।

वास्तव बात यह है कि शब्दों का स्त्रीलिंग वो पुल्लिङ्ग लिखा जाना वो किसी वाक्य का ठीक ठीक लिपिबद्ध होना समाज की बोलचाल पर निर्भर करता है। व्याकरण भी बोलचाल के अनुसार ही विधिबद्ध होता है, अर्थात् बोलचाल की विधिबद्ध प्रणाली ही व्याकरण है। अतएव समाज द्वारा जो शब्द जिस प्रकार काम में लाया जाता है, अथवा जो वाक्य जिस प्रकार व्यवहृत होता है, उस को उसी प्रकार काम में लाना और व्यवहार करना चाहिये।

दो चार शब्दों के विषय में मुझ को कुछ बातें और कहनी हैं, उन को कह कर अब मैं इस लेख को समाप्त करूंगा।

"अधखिला फूल" के पृष्ठ ८८ पंक्ति ८ में 'पतोहें' वो पृष्ठ ११० पंक्ति २० में देवतों, वो पृष्ठ १२८ पंक्ति १० में विपतों, शब्द का प्रयोग हुआ है। व्याकरणानुसार इन शब्दों का शुद्ध रूप, पतोहुयें, देवताओं, और विपत्तियों, होता है। अतएव यहां पर प्रश्न हो सकता है, कि इन शुद्ध रूपों के स्थान पर, पतोहें इत्यादि अशुद्ध रूप क्यों लिखे गये? बात यह है कि पतोहू और विपत्ति शब्द का बहुवचन व्याकरणानुसार अवश्य पतोहुयें, और विपत्तियों होगा, परन्तु सर्वसाधारण बोलचाल में पतोहू के स्थान पर पतोह और विपत्ति के स्थान पर विपत शब्द प्रयोग करते हैं, अतएव व्याकरणानुसार इन दोनों शब्दों का बहुवचन पतोहें, और विपतों किम्वा विपतें यथास्थान होगा। इस के अतिरिक्त उच्चारण की सुविधा कारण अब पतोहुयें वो विपत्तियों के स्थान पर पतोहें वो विपतों शब्दों का ही सर्वसाधारण में प्रचार है, इस लिये पतोहुयें वो विपत्तियों के स्थान पर पतोहें वो विपतों लिखा जाना ही सुसंगत है। हां देवतों शब्द किसी प्रकार व्याकरणानुसार सिद्ध न होगा, क्योंकि देवता शब्द का बहुवचन जब होगा तो देवताओं ही होगा। अतएव इस शब्द के विषय में अशुद्ध प्रयोग का दोष अवश्य लग सकता है। परन्तु स्मरण रहे कि व्याकरणानुसार यद्यपि देवतों पद असिद्ध है, तथापि सर्वसाधारण की बोलचाल में देवताओं पद कभी नहीं है, देवता का बहुवचन उन लोगों के द्वारा देवतों ही व्यवहृत होता है, और समाज की बोलचाल को सदा व्याकरण पर प्रधानता है, अतएव देवताओं के स्थान पर देवतों पद का ही प्रयोग किया गया है। किन्तु यदि इस में मेरा दुराग्रह समझा जावे तो देवतों शब्द के स्थान पर देवताओं शब्द ही पढ़ा जावे, इस विषय में मुझ को विशेष तर्क वितर्क नहीं है।

पतोहें, वो विपतों, किम्वा विपतें इत्यादि के समान पहले से भी प्रयोग होता आया है, आप लोग बाबू हरिश्चन्द्र के निम्नलिखित पद के उन शब्दों पर ध्यान दीजिये, जिन के नीचे आड़ी

लकीर दी हुई है। उन शब्दों का बहुवचन रीतियां, नीतियां, प्रीतियां, व्याकरणानुसार होना चाहिये, परन्तु उन का उच्चारण रीत, नीत, प्रीत, समझ कर बहुवचन रीतैं, नीतैं, प्रीतैं बनाया गया है।

पद।

कुढ़त हम देखि २ तुव रीतैं। सब पै इक सी दया न राखत नई निकाली नीतैं॥ अजामेल पापी पर कीनी जौन कृपा करि प्रीतैं। सो हरिचन्द हमारी बारी कहां बिसारी जी तैं॥

'ठेठ हिन्दी का ठाठ' के बहुल प्रचार के साथ उस की भाषा के विषय में लोगों को अनेक तर्कनायें भी हुईं, समय समय पर श्रवणपरम्परा से मुझ को उन का ज्ञान होता रहा, परन्तु जब नागरीप्रचारिणी सभा के सभा-भवन-उत्सव पर मैं काशी गया तो वहां कई एक सज्जनों से इस विषय में विशेष बात चीत हुई। मेरे भक्तिमान कनिष्ठ सहोदर पं० गुरुसेवक सिंह उपाध्याय बी० ए० डिप्टी कलक्टर मिर्ज़ापूर ने जब इस ग्रंथ की एक एक प्रति महा-महोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी इत्यादि सुजनों को अर्पण की थीं, तो उन लोगों ने भी इस विषय में कई एक बातें कही थीं। निदान जो जो तर्क वितर्क 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' की भाषा के विषय में आज तक हुये हैं, मैं ने यथासामर्थ्य उन सब का उत्तर इस भूमिका में लिख दिया है। किन्तु मेरा उत्तर सुसंगत है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। इस का विचार भाषा-मर्म्मज्ञों के हाथ है। मुझ को इस बात का खेद है कि मेरी इच्छा के विरुद्ध भूमिका बहुत बिस्तृत हो गई, परन्तु क्याकरूं प्रसंग-बश मुझ को अनेक विषयों की अवतारणा करनी पड़ी— आशा है आप लोग विवश समझ कर क्षमा करेंगे॥

मैं ने इस "अधखिला फूल, को भी ठेठ हिन्दी में ही लिखा है, और यथासामर्थ्य किसी अन्य भाषा का शब्द न आने देने की चेष्टा की है, ऐसा कई ठौर लिखा जा चुका है, किन्तु इस पौने दो सौ

पुष्ठ की पुस्तक में अनवधानता अथवा भ्रमवश भी अन्य भाषा का कोई शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है—यह मैं नहीं कह सकता। यदि ऐसी त्रुटि कहीं दृष्टिगोचर होवे, तो मैं अपने सहृदय पाठकों से उस की मार्जना और अभिज्ञताप्रदान की प्रार्थना करता हूं। किन्तु विनय यह है कि जवान और बच्चा इत्यादि शब्दों पर गंभीर गवेषणा पूर्वक दृष्टि डाली जावे, क्योंकि यद्यपि यह शब्द फ़ारसी के ज्ञात होते हैं, किन्तु वास्तव में यह संस्कृत शब्द युवन् और वत्स के अपभ्रंश हैं॥

एक विषय में मैं बहुत लज्जित हूं—और वह इस भूमिका की भाषा है। इस भूमिका में बहुत से संस्कृत शब्दों का प्रयोग कर के मैं गोस्वामी तुलसीदासजी के इस वाक्य का कि "पर उपदेश कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥" स्वयं आदर्श बन गया हूं। किन्तु क्या करूं एक तो जटिल विषयों की मीमांसा करनी थी, दूसरे यह भूमिका बहुत शीघ्रता में लिखी गई है, अतएव उक्त दोष से मैं मुक्त न हो सका। यदि परमात्मा सानुकूल है तो आगे को इस विषय में सफलता लाभ करने की चेष्टा करूंगा॥

विनयावनत—

हरिऔध।
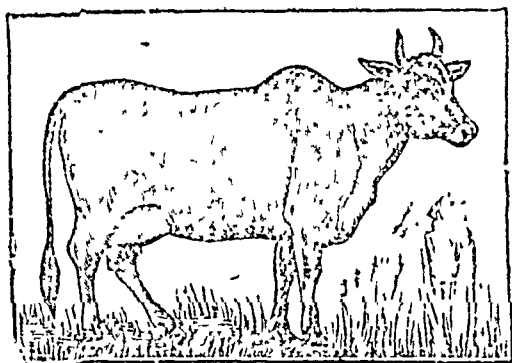
# अधखिलाफूल ।

## पहलीपंखड़ी ।

वैसाख का महीना, दो घड़ी रात बीत गई है। चमकीले तारे चारों ओर आकास में फैले हुये हैं, दूज का बाल सा पतला चाँद, पच्छिम ओर डूब रहा है, अंधियाला बढ़ता जाता है, ज्यों ज्यों अंधियाला बढ़ता है, तारों की चमक बढ़ती जान पड़ती है। उन में जोत सी फूट रही है, वह कुछ हिलते भी हैं, उन में चुपचाप कोई कोई कभी टूट पड़ते हैं, जिस से सुनसान आकास में रह रह कर फुलझड़ी सी छूट जाती है। रात का सन्नाटा बढ़ रहा है, ऊमस बड़ी है, पौन डोलती तक नहीं, लोग घबरा रहे हैं, कोई बाहर खेतों में घूमता है, कोई घर की खुली छतों पर ठंढा हो रहा है, ऊमस से घबरा कर कभी कभी कोई टिटिहरी कहीं बोल उठती है।

भीतों से घिरे हुये एक छोटे से घर में एक छोटा सा आँगन है, हम वहीं चल कर देखना चाहते हैं, इस घड़ी वहां क्या होता है। एक मिट्टी का छोटा सा दीया जल रहा है, उस के धुँधले उँजाले में देखने से जान पड़ता है, इस आंगन में दो पलँग पड़े हुये हैं। एक पलँग पर एक ग्यारह बरस का हँसमुख लड़का लेटा हुआ उसी दीये के उँजाले में कुछ पढ़ रहा है। दूसरे पलँग पर एक पैंतीस छत्तीस बरस की अधेड़ इसतिरी लेटी हुई धीरे धीरे पंखा हांक रही है, इस पंखे

से धीमी धीमी पौन निकल कर उस लड़के तक पहुँचती है, जिस से वह ऐसी ऊमस में भी जी लगा कर अपनी पोथी पढ़ रहा है। इस इसतिरी के पास एक चौदह बरस की लड़की भी बैठी है। यह एकटक आकास के तारों की ओर देख रही है, बहुत बेर तक देखती रही, पीछे बोली मा! आकास में यह सब चमकते हुये क्या हैं ?

मा ने कहा, बेटी! जो लोग इस धरती पर अच्छी कमाई करते हैं, मरने पर वही लोग सरग में बास पाते हैं, उन में बड़ा तेज होता है, अपने तेज से वह लोग सदा चमकते रहते हैं। दिन में सूरज के तेज से दिखलाई नहीं पड़ते, रात में जब सूरज का तेज नहीं रहता हमलोगों को उन की छबि देखने में आती है। यह सब चमकते हुये तारे सरग के जीव हैं, इन की छटा निराली है, रूप इन का कहीं बढ़ कर है। न इन लोगों के पास रोग आता, न यह बूढ़े होते, दुख इन के पास फटकता तक नहीं। यह जो तारों के बीच से उजली धारसी दक्खिन से उत्तर को चली गई है, आकास गंगा है, इस का पानी बहुत सुथरा मीठा और ठंढा होता है, वह लोग इस में नहाते हैं, मीठे अनूठे फलों को खाते हैं, भीनी भीनी महँकवाले अनोखे फूल सूंघते हैं, भूख प्यास का डर नहीं, कमाने का खटका नहीं, जब जो चाहते हैं मिलता है, जब जो कहते हैं होता है, सदा सुख चैन से कटती है, इन लोगों के ऐसा बड़भागी जग में और दूसरा कोई नहीं है।

उत्तर ओर यह जो अकेला चमकता हुआ तारा दिखलाई पड़ता है, जिस के आस पास और कोई दूसरा तारा नहीं है, यह ध्रुव है। यह एक राजा के लड़के थे, इन्हों ने बड़ा भारी तप किया था, उसी तप के बल से आज उन को यह पद मिला हुआ है।

इन सर के ऊपर के सात तारों को देखो, यह सातो रिखी हैं। इन में ऊपर के चार देखने में चौखूंट जान पड़ते हैं, पर नीचे के तीन कुछ कुछ तिकोने से हैं। इन्हीं तीनों में जो बीच का तारा है, वह बसिस्ट मुनी हैं। उन के पास ही जो बहुत छोटा सा तारा दिखलाई पड़ता है, वह अरुंधती हैं, यह बसिस्ट मुनी की इसतिरी हैं। यह बड़ी, सीधी, सच्ची, दयावाली, और अच्छी कमाई करनेवाली हो गई हैं, अपने पती के चरनों में इन का बड़ा नेह था। इन की भांत जो इसतिरी अपने पती के चरनों की सेवकाई करती हैं, पती कोही देवता जानती हैं, उन्हीं की पूजा करती हैं, उन्हीं में लव लगाती हैं, सपने में भी उन के साथ बुरा बरताव नहीं करतीं, भूल कर भी उन को कड़ी बात नहीं कहतीं, कभी उन के साथ छल कपट नहीं करतीं, वह सब भी मरने पर इसी भांत अपने पती के साथ रह कर सरगसुख लूटती हैं।

जिन जीवों की कमाई पूरी हो जाती है, जिन का पुन्न चुक जाता है, वह सब फिर सरग से आकर धरती में जनमते हैं, ऐसेही जीव यह सब रात के टूटते हुये तारे हैं। धीरे धीरे अपना तेज खो कर सरग से गिरते हैं, और फिर आ कर इस धरती में जनम लेते हैं।

लड़का चुपचाप मा की बातों को सुनता था, जब मा ने बातें पूरी कीं, बोला मा तुम यह सब क्या कहती हो यह सब तारे रिखी मुनी नहीं हैं, जैसी हमारी यह धरती है, वैसेही एक एक तारे एक एक धरती हैं इन में कोई कोई हमारी धरती से भी सैकड़ों गुने बड़े हैं यह तारे लाखों कोस की दूरी पर हैं। इसी से देखने में छोटे जान पड़ते हैं नहीं तो बहुत सी बातों में यह सब ठीक हमारी धरती के से हैं। जैसे हमारी धरती पर

नदी, पहाड़, झील, बन, पेड़, गांव, घर, जीव, जन्तु हैं, वैसेही इन तारों में भी समुन्दर, नदी, बन, पहाड़, पेड़, पौधे और जीव हैं। चान्द में जो काले काले धब्बे देखने में आते हैं, वह उस में के नदी पहाड़ हैं। जैसे अपनी रात होने पर हमलोग इन तारों को आकास में चमकता हुआ देखते हैं, वैसे ही जब उन तारों में रात होती है, तो वहां के रहनेवाले भी हमारी धरती को इसी भांत आकास में चमकता हुआ तारा देखते होंगे। तारों के बीच से उत्तर से दक्खिन को जो उजली धार सी निकल गई है, यह आकास गंगा नहीं है, यह अनगिनत तारों की पांति है, जो बहुत छोटे और बहुत दूर होने से आंखों को दिखलाई नहीं देते, और आंखों से न दिखलाई देनेही से उन की पांति एक उजली धार सी जान पड़ती है, नहीं तो सचमुच यह कोई नदी नहीं है, और न उजली धारही है। अरुंधती, जिस को तुम बसिस्ट मुनी के पास बैठी समझती हो, उन से लाखों कोस की दूरी पर होगी, यहां से बहुत दूर पर होने ही से हम तुम को वह दोनों पास पास जान पड़ते हैं। यह जो तारे टूटते हैं, वह सरग के जीव नहीं हैं जो धरती की ओर जनमने के लिये गिरते हैं, भगवान ने अंत सब का बनाया है, दिन पाकर इन तारों का भी नास होता है, उस घड़ी यह तारे बिखर जाते हैं, और उन के अनगिनत टुकड़े आकास में इधर उधर गिरने लगते हैं, जो टुकड़े हम लोगों की आंखों के सामने होकर निकलते हैं, वही टूटते हुये तारे हैं। आज कल के पढ़े लिखे लोग कहते हैं दस सौ बरस पीछे हमारा चांद भी बिखर जायगा, जिस घड़ी यह बिखरेगा, इस के टुकड़े भी टूटते हुये तारे की भांत आकास में दिखलाई पड़ेंगे।

वह चौदह बरस की लड़की जो उस अधेड़ इसतिरी के पास बैठी हुई थी, लड़के की बातों को सुन कर खिलखिला कर हँस पड़ी, वह अधेड़ इसतिरी भी जो इन दोनों लड़कों की मा है, इन बातों को सुन कर कुछ घड़ी चुप रही, फिर बोली, बेटा ! यह सब नई बातें हैं, कुछ अचरज नहीं जो ठीक हों, पर हमलोगों के उतने काम की नहीं हैं, ऐसी बातें कुछ तुम लोगों हीं के काम की होती है।

लड़के ने कहा, मा ! यह बातें नई कैसे हैं, एक पंडित परसों कहते थे, यह सब बातें हमारे यहां भी लिखी हुई हैं। यह जो एक तारा दक्खिन ओर झुका हुआ सर के ऊपर लाल रंग का दिखलाई देता है, इस का नाम मंगल है। आज कल के पढ़े लिखे लोग कहते हैं, यह तारा हमारी धरती ही का टुकड़ा है, और इसी से निकल कर बना है, इस की सब बातें लगभग धरतीही की सी हैं। वह पंडित कहते थे कि इस बात को हमारे बड़े लोग भी जानते थे. भागा, जो न जानते होते मंगल को धरती का बेटा * आज तक ऐसेही एक छोटा सा तारा जो कभी सबेरे। में वह फिर कभी सांझ को पच्छिम ओर झुका हुआ किसी गांव पर देता है. वह बुध है, कहर गया है, उसी से यह एक टुकड़ा थोड़ा दिन हुआ है, पड़ा है, यह एक मन से घट थोड़े हीं पीछे गया है। पंडि निकल कर न गिरता, तो आकास बातें हमारे यहां पर का टुकड़ा कहां से आता। बड़ी कुसल

मा बेटे में सी गांव पर नहीं गिरा, नहीं तो आज हम बड़ा उँजाला खोज भी न मिलता।

पुराने ढंग के पंडित भी वहां खड़े थे, वह

* संस्कृत में भी लिखा है

। नहीं है, जो यह मनाक का टुकड़ा होता,

से गिरते हुये उन को दिखलाई पड़ा। यह तारा ठीक इन लोगों के घर की सीध में आरहा था, और ज्यों ज्यों पास आता जाता था, एक सनसनाहट की धुन चारों ओर फैलती जाती थी, जिस से इन लोगों में खलबली सी मच गई। पर देखते ही देखते यह तारा इन लोगों के घर से दूर एक खेत में जा गिरा, और लड़का उठ कर उसी ओर चला गया।

---

## दूसरी पंखड़ी

जिस खेत में यह टूटा हुआ तारा गिरा, उस में देखते
ी देखते एक भीड़ सी लग गई, लोग पर लोग चले आते
ौर सब यही चाहते थे, किसी भांत भीड़ चीर कर
तुम ... क पहुँचें, पर इतने लोग वहां इकट्ठे हो गये थे,
कोस को
आये हुये लोगों का उस के पास तक पहुँचना
हम तुम को व...
...तनी बात सुनने में आती थी, सब
तारे टूटते हैं, वह सरग ...
...स्या है, टूटे हुये तारे के
जनमने के लिये गिरते हैं, भगवा...
से एक भी इतना जीवट
दिन पाकर इन तारों का भी नास ...
का भेद बतलावे,
तारे बिखर जाते हैं, और उन के अन
पत्थर की बड़ी
में इधर उधर गिरने लगते हैं, जो टुकड़े ...
भी बिना हिले
के सामने होकर निकलते हैं, वही टूटते हु...
... नहीं लगा
कल के पढ़े लिखे लोग कहते हैं दस सौ ब...
कलेजा थामा,
चांद भी बिखर जायगा, जिस घड़ी यह ...
सनसनाता
टुकड़े भी टूटते हुये तारे की भांत आकास में दि...
खटाक का

सबद हुआ, और फिर वैसा ही सन्नाटा छा गया । वह तनक हिला तक नहीं, जैसे पहले पड़ा था वैसे ही पड़ा रहा । अबकी बार एक दूसरे जन ने एक मोटी लाठी से ठोंक ठोंक कर उस को भली भांत देखा, और कहा, यह तो पत्थर की चट्टान है, कोई डरने की बात नहीं है, सब लोग पास आओ, इस को देखो, जो मैं कहता हूं सच है कि नहीं । धीरे धीरे छड़ी और हाथों से टटोल कर सब लोगों ने इस दूसरे जन की बात मानी, पर अब यह सोचा जाने लगा, आकास से इतनी बड़ी पत्थर की चट्टान क्योंकर गिरी ?

लोग यह सोचही रहे थे, इसी बीच एक बूढा बोल उठा भाइयो यह मैनाक पहाड़ का एक टुकड़ा है, पहले पहाड़ों को पंख होते थे इस लिये वह सब उड़ते और बहुत से गांवों को गिर कर उजाड़ दिया करते थे, जब यह बात राजा इन्दर से न देखी गई, तो उन्हों ने अपने हथियार से सब पहाड़ों का पंख काट डाला । मैनाक उन के डर से भागा, और समुन्दर में जाकर छिप रहा, इस से वह आज तक बचा हुआ है । जान पड़ता है इस कलजुग में वह फिर समुन्दर से निकला है, और उड़ता हुआ किसी गांव पर गिरने के लिये किसी ओर गया है, उसी से यह एक टुकड़ा निकल कर यहां गिर पड़ा है, यह एक मन से घट थोड़े ही होगा, जो उस में से निकल कर न गिरता, तो आकास में इतना बड़ा पत्थर का टुकड़ा कहां से आता । बड़ी कुसल भई जो मैनाक इसी गांव पर नहीं गिरा, नहीं तो आज हम लोगों का कहीं खोज भी न मिलता ।

एक बूढ़े पुराने ढंग के पंडित भी वहां खड़े थे, वह बोले यह बात नहीं है, जो यह मैनाक का टुकड़ा होता,

तो इस में जोत कहां से आती, आप लोगों ने नहीं देखा था, इस के गिरने के समय कैसा उँजाला हुआ था, और जब यह आकास से नीचे को आ रहा था, जान पड़ता था सूरज का टुकड़ा धरती की ओर आ रहा है। मैं समझता हूं, यह सरग का कोई जीव है, किसी सराप से पत्थर हो कर धरती में आया है। पुरानों में लिखा है अपने पती के सराप से अहल्या को पत्थर होना पड़ा था, जान पड़ता है वही दसा इस की भी हुई है। अभी घड़ी भर पहले दूसरे तारों की भांत आकास में यह भी चमकते रहे होंगे, पर जग का कैसा ढंग है, जो घड़ी भर पीछे हम इन को पत्थर हो कर धूल माटी के बीच एक खेत में पड़ा हुआ पाते हैं। राम का नाम जपने के लिये इस से बढ़ कर और कौन सी डरावनी बात दिखलाई जा सकती है।

एक नये पढ़े बाबू भी वहां खड़े थे, बोले, आप लोग जो कहें, पर जहां तक मैं सोचता हूं टूटे हुये तारे छोड़ यह और कुछ नहीं है। आकास में इतने बड़े और इस से कई गुने लम्बे चौड़े और छोटे अनगिनत टुकड़े दिन रात चक्कर लगाया करते हैं, दिन पा कर जब ऐसे बहुत से टुकड़े धीरे धीरे इकट्ठे हो जाते हैं, तो एक तारा बन जाता है, इस तारे में कुछ दिनों में जोत भी आ जाती है, और तब यह चमकीला हो जाता है। ऐसे ही बनने के बहुत दिनों पीछे बहुत से तारे बिखर भी जाते हैं, जिस घड़ी यह बिखरते हैं, उस बेले इन के अनगिनत टुकड़े आकास में इधर उधर फैलते हैं, उन में से पहले की भांत बहुत से फिर आकास ही में चक्कर लगाने लगते हैं, बहुत से इतने छोटे होते हैं, जो कठिनाई से देखे जा सकते हैं, जो कुछ इन से बड़े होते हैं, यह आकास

से धरती तक पहुंचते पहुंचते राख बन जाते हैं, इन में जो बहुत बड़े होते हैं, वह कभी कभी धरती पर भी आन गिरते हैं, ऐसी बात सैकड़ों ठौर हो चुकी हैं, कुछ पहले पहल यहीं यह बात नहीं हुई है। आप लोग इस को भली भांति देखें, यह पत्थर की चट्टान नहीं है, जिन सब वसतुओं से हमारी यह धरती बनी है, वही सब वसतू इस में भी हैं।

यह सब बातें हो ही रही थीं, इसी बीच पूरब ओर से बहुत बड़ा धक्का आया, जिस से सामने के सबलोगों के पांव उखड़ गये, और एक लड़का धड़ाम से उसी टूटे हुये तारे के ऊपर गिर पड़ा, गिरते ही उस के सर में बहुत चोट [illegible]

सर फूट गया, लहू बहने लगा, और वह अचेत हो [illegible] कैसी

यह देख कर सब लोग घबरा उठे, और फिर [illegible] यह कौन

उतनी बात सुनी जाने लगी। दो चार लोगों इतना चंचल

कर उस लड़के को उस के घर [illegible] प्यारा सुर तो

चरचा गांव भर में फैल घर के बाहर भी तो निकला आ रहा

के पास की [illegible] झनकार आ रही है उसी ओर जाना

[illegible]यों जायगा। देखते नहीं छम् छम् करती उस

[illegible]र कौन खड़ी हो गई? क्या यह ऊपर की

[illegible]गमरवाली इसतिरी तो नहीं है?

जो जन अभी घर से बाहर आया है, उस का नाम कामिनीमोहन है। कामिनीमोहन ने उस इसतिरी की ओर देखकर कहा। क्यों बासमती! अच्छी तो हो?

बासमती। हां! अच्छी हूं! बहुत अच्छी हूं!! आज

हाथी आप का बहुत कुछ काम कर के आई हूं, इसी लिये

[illegible] हूं। मेरे लिये अच्छा होना और दूसरा क्या है!!!

अच्छी कामिनीमोहन। क्या सब ठीक हो गया? क्या है,

[illegible]म मोहनमाला ले ही लोगी, मैं सच कह[illegible]। वह

बार [illegible]

अच्छी गत सुनाता है, कभी अपने आप चुप हो जाता है। रात का सन्नाटा है, कहीं कोई बोलता नहीं, इस से इस बाजे का सुर रंग दिखला रहा है। जिस पलंग की बात हम ने ऊपर कही है, उसी पर लेटा हुआ एक जन इस बाजे को बहुत ही जी लगा कर सुन रहा है, तनक हिलता तक नहीं। बाहर जो कहीं कुछ खड़कता है, तो भौंहें टेढ़ी हो जाती हैं, पर बाजे में इतना लीन होने पर भी वह जैसे कुछ चंचल है, आंखें उस की किवाड़ की ओर लगी हैं, कान कुछ खड़े से हैं, जान पड़ता है किसी की बाट देख रहा है। और क्या य... उतावले होकर ही जी बहलाने के लिये उस ने बाजे में घड़ी भ... रक्खी है, नहीं तो इतना चंचल क्यों ?

एक खेत म...
इस से वह ...यों में से धीरे धीरे ठंढी ठंढी बयार आती है
सकती है। उस सन्नाटे में बाजे के मीठे मीठे सुरों को लेकर
...ाले में जाते हुये किसी थके हुये

एक नये पढ़े बाबू भी वहां ख... सी ढाल देती है, कहीं
जो कहें, पर जहां तक मैं सोचता हूं टूट... त... हुये किसी
और कुछ नहीं है। आकास में इतने बड़े औ... कराती है
गुने लम्बे चौड़े और छोटे अनगिनत टुकड़े दिन... में पीर सी
लगाया करते हैं, दिन पा कर जब ऐसे बहुत से टुकड़े धी... धीरे इकट्ठे हो जाते हैं, तो एक तारा बन जाता है, इस तारे में कुछ दिनों में जोत भी आ जाती है, और तब यह चमकीला हो जाता है। ऐसे ही बनने के बहुत दिनों पीछे बहुत से तारे बिखर भी जाते हैं, जिस घड़ी यह बिखरते हैं, उस बेले इन के अनगिनत टुकड़े आकास में इधर उधर फैलते हैं, उन में से पहले की भांत बहुत से फिर आकास ही में चक्कर लगाने लगते हैं, बहुत से इतने छोटे होते हैं, जो कठिनाई से देखे जा सकते हैं, जो कुछ इन से बड़े होते हैं, वह आकास

उस के मन को लुभाया, उस के उमंग को दूना किया, पर उस के हाथ के गजरों की महंक पर आप भी मोह गई। इधर यह फूलों की बास से बसी हुई आगे बढ़ी, उधर वह उन मीठे मीठे सुरों पर लोट पोट होती हुई लम्बी लम्बी डग भरने लगी। कुछ ही बेर में उस ने उस सजे हुये घर को देखा।

बाजा बजते बजते रुक गया, सुरों की दूर तक फैली हुई लहरें पहले पवन में पीछे धीरे धीरे आकास में लीन हुईं, सन्नाटा फिर जैसे का तैसा हुआ, पर यह क्या ? फिर यह सन्नाटा क्यों टूट रहा है ? यह घुंघुरुओं की झनकार कैसी सुनाई पड़ती है ? बाजे के सुरों से भी रसीला सुर यह कौन छेड़ रहा है ? क्या जिस जन को हम ने ऊपर इतना चंचल देखा था, यह उसी को ढाढ़स बंधानेवाला प्यारा सुर तो नहीं है ! वह देखो, वह घर के बाहर भी तो निकला आ रहा है, क्या जिस ओर से झनकार आ रही है उसी ओर जाना चाहता है ? क्यों जायगा। देखते नहीं छम् छम् करती उस के पास आकर कौन खड़ी हो गई ? क्या यह ऊपर की गजरेवाली इसतिरी तो नहीं है ?

जो जन अभी घर से बाहर आया है, उस का नाम कामिनीमोहन है। कामिनीमोहन ने उस इसतिरी की ओर देखकर कहा। क्यों बासमती ! अच्छी तो हो ?

बासमती। हां ! अच्छी हूं ! बहुत अच्छी हूं ! ! आज हाथों आप का बहुत कुछ काम कर के आई हूं, इसी लिये [illegible] हूं। मेरे लिये अच्छा होना और दूसरा क्या है !!!

अच्छी [illegible] ामिनीमोहन। क्या सब ठीक हो गया ? क्या [illegible] हैं,

[illegible] म मोहनमाला ले ही लोगी, मैं सच कह[illegible]। वह

बार [illegible]

मती ! जो मेरा काम हो गया, तो मैं तुम को मोहनमालाही न दूंगा, उस के संग एक सोने का कंठा भी दूंगा।

वासमती। आप इतने उतावले क्यों होते हैं ? आप से मैं ने क्या नहीं पाया, और क्या नहीं पाऊंगी। मैं मोहन-माले और कंठे को कुछ नहीं समझती। जिस से आप का जी सुखी हो, मैं उसी की खोज में रहती हूं, और उस के मिलने पर सब कुछ पा जाती हूं।

कामिनीमोहन। क्या हम यह नहीं जानते, तुम कहोगी तब जानेंगे ! जो तुमारे में यह गुन न होता तो हम तुमारा इतना भरोसा क्यों करते ? पर इस घड़ी इन बातों को जाने दो। आज क्या कर आई हो यह बतलाओ ?

वासमती। बतलाऊंगी, सब कुछ बतलाऊंगी, पर इस घड़ी नहीं, मैं जो कुछ ठीक ठाक कर आई हूं, जो मैं बात करने में फसूंगी, तो वह सब बिगड़ जावेगा, इस लिये अब मैं यहां ठहरना नहीं चाहती, उसी ओर जाती हूं। आज मैं आप से मिलने के लिये पहले कह चुकी थी, इसी लिये आई हूं। जो मैं न आती, आप घबराया करते।

कामिनीमोहन। क्या दो एक बातें भी न बतलाओगी ?

वासमती। अभी दो एक बातें भी न बतलाऊंगी, अब मैं जाती हूं; आप इन गजरों से अपना जी बहलाइये, मैं जब चलने लगी थी, आप के लिये इन को साथ लेती आई थी। देखिये तो इन में कैसी अच्छी महंक है।

कामिनीमोहन ने गजरों को हाथ में लेकर कहा, ली, ऐसी उन म चाहती हो तो जाओ, पर जी में एक अनोखा और आंसू लगाने ल[illegible] हो, जब तक फिर आकर मुझ से तुम सब ने जिस देखे जा सक[illegible]ोगी, मुझ को चैन न पड़ेगी। क्या इन [illegible]ठी बातों

के न कुम्हलाते कुम्हलाते तुम आकर मेरे जी की कली खिला सकती हो ?

बासमती । आप के जी की कली मैं खिला सकती हूं, पर इन गजरों के न कुम्हलाते कुम्हलाते नहीं । कहां गजरों का कुम्हलाना ! कहां कली का खिलना । क्या बिना भोर हुये भी कली खिलती है ?

कामिनीमोहन । गजरे कब बिना भोर हुये कुम्हलाते हैं ?

बासमती । आप ही सोचें । मैं यही कहूंगी, जिस घड़ी फूलों से भी कहीं सुन्दर आप के हाथों में मैं ने इन गजरों को दिया, यह अपनी बड़ाई को खो जाते देख कर उसी घड़ी कुम्हला गये ! अब आगे यह क्या कुम्हलायेंगे ?

कामिनीमोहन ने देखा, इतना कह कर वह मुसकुराती हुई वहां से चली गई । और देखते ही देखते उसी अंधियाले में छिप गई । कभी कभी दूर से आकर उस के बजते हुये घुंघुरुओं की झनकार कानों में पड़ जाती थी ।

कामिनीमोहन कुछ घड़ी वहीं खड़ा खड़ा न जाने क्या सोचता रहा, पीछे वह घर में आया, और फिर उसी पलंग पर लेट गया, पर नींद न आई । घंटों इधर उधर करवटें फेरता रहा, भांत भांत के उधेड़ बुन में लगा रहा, आंखें मीच कर नींद के बुलाने का जतन करता रहा, पर नींद कहां ! अबकी बार वह फिर पलंग पर से उठा, बिछावन को भेद क्यों झाड़ा, कुछ घड़ी धीरे धीरे टहलता रहा, पीछे सोया, [illegible] आई, और कुछ घंटों के लिये भांत भांत की उलझनों से छुटकारा पाया ।

## चौथी पंखड़ी।

चांद कैसा सुन्दर है, उस की छटा कैसी निराली है, उस की सीतल किरनें कैसी प्यारी लगती हैं! जब नीले आकास में चारों ओर जोति फैला कर वह छवि के साथ रस की बरखा सी करने लगता है, उस घड़ी उस को देखकर कौन पागल नहीं होता? आंखें प्यारी प्यारी छवि देखते रहने पर भी प्यासी ही रहती हैं! जी को जान पड़ता है, उस के ऊपर कोई अमृत ढाल रहा है, दिसायें हंसने लगती हैं, पेड़ की पत्तियां खिल जाती हैं। सारा जग उमंग में मानों डूब सा जाता है। ऐसे चांद, ऐसे सुहावने और प्यारे चांद में काले २ धब्बे क्यों हैं? क्या कोई बतलावेगा!!! आहा! यह कौल सी बड़ी बड़ी आंखें कैसी रसीली हैं! इन की भोली भोली चितवन कैसी प्यारी है!! इस में मिसिरी किस ने मिला दी है!!! देखो न कैसी हंसती हैं, कैसी अठखेलियां करती हैं कमाल इन की कैसी मतवाली है? यह जी में क्यों पैठी जाती हैं? बरबस मान को क्यों अपनाये लेती हैं? क्या इन की सुघराई ही यह सब नहीं करती; ओहो! क्या कहना है!! कैसी सुघराई है!!! मन क्यों हाथों से निकला जाता है? सुघराई! सुघराई!! सुघराई!!! पर घड़ी भर पीछे यह क्या गत है? इन को इतना उदास क्यों देखते हैं! यह आंसू क्यों बहा रही हैं? क्या कोई कह सकता है! जो आंखें ऐसी रसी[illegible] उन[illegible] और ऐसी मतवाली हैं, उन को रोने धोने [illegible]ली, ऐसी लगाने [illegible] रोग क्यों लगा? अभी कुछ घड़ी पहले ह[illegible]और आंसू देखे जा सके। अपने लड़के लड़की के साथ मीठी [illegible] ने जिस [illegible]ठी बातों

से जी बहलाते देखा था, हंसती बोलती, पाया था, वह इस घड़ी क्यों रो कलप रही है, क्यों सर पर हाथों को मार रही है? क्या इस का भेद बतानेवाला कोई है? नहीं कहा जा सकता! जग में सभी ढंग के लोग हैं! कोई बतलाने वाला भी होगा। पर मैं समझता हूं, जहां सुख है, वहां दुख भी है, जहां अच्छा है वहां बुरा है, जहां फूल है वहां कांटा है।

जाड़ों का दिन है, सीत से कलेजा कांप रहा है, घने बादल आकास में छाये हुये हैं। पवन चल रही है, जो फटा कपड़ा पास है, उस से देह तक नहीं ढक सकती, सूरज की किरनों का ही सहारा है, पर बादल कैसे हटें? घबराहट बड़ी है। इतने में आकास में एक ओर बादल कुछ हटते दिखलाई पड़े, थोड़ा सा आकास खुल गया, इसी पथ से सूरज की किरनें आ कर कुछ कांपते हुये कलेजे को ढाढ़स बंधाने लगीं! जी थो[illegible]काने हुआ, धीरे धीरे यह भरोसा भी हुआ—अब ब[illegible] हटते ही जावेंगे। जग के सब कामों की यही गत है—जहां उलझनही उलझन देखने में आती है—वहां थोड़ा सा सुलझावही बहुत गिना जाता है—जो बातें बहुत ही गूढ़ हैं, उन का थोड़ा सा ओर छोर मिल जाना ही जी का बहुत कुछ बोध करता है। परमेसर की करतूत के गूढ़ भेदों का समझना सहज नहीं है—किस घड़ी कौन काम किस लिये होता है, और उस का छिपा हुआ भेद क्या है, उस को हमलोग क्या जान सकते हैं। पर ऐसे [illegible] [illegible]र जो बातें देखने सुनने में आती हैं—उन्हीं में [illegible] [illegible] क को हमलोग उस काम का कारन समझ लेते हैं, दे[illegible] [illegible] यही इतने समझ लेने ही को बहुत जानते हैं। वह

इसितिरी जिस की चरचा हम ने ऊपर की है, इस घड़ी क्यों रो रही है? सर पर क्यों हाथों को मार रही है? हंसते ही हंसते उस की यह क्या गत हो गई? हम इस का गूढ़ भेद क्या बतला सकते हैं, पर जो बात देख सुन रहे हैं उस को बतलावेंगे।

एक खाट बिछी हुई है, उस पर वही लड़का जिस को हम ने आंगन में पलंग पर लेटे हुये पोथी पढ़ते देखा था, अचेत पड़ा हुआ है, सर से लहू बह रहा है, मुंह पीला पड़ गया है। पासही पांच चार इसितिरियां भी बैठी हैं। इन में एक लड़के की मा दूसरी उस की बहन और तीसरी गजरेवाली है। दो उसी पड़ोस की और हैं। लड़के की मा उस को अचेत और उस के सर से लहू बहता देख कर ही रो पीट रही है। और उस की बहन भी बहुत घबराई हुई है, पर इन दोनों को वही गजरेवाली समझा बुझा रही है। [illegible] कैसी की दोनों इसितिरियों में से एक पानी [illegible] छोड़ती है, और [illegible] री लड़के के घाव को धो [illegible] रही है। लड़के की मा का नाम पारबती, और बहिन का नाम देवहूती है। गजरेवाली का नाम बासमती है, यह आप लोग जानते हैं, यह जाति की मालिन है।

पारबती और देवहूती को बहुत घबराई हुई देख कर बासमती ने कहा, लहू का जाना रुकता नहीं, लड़का अचेत पड़ा है, बैद जी आज घर नहीं हैं जो उन को बुला लाकर दिखलाऊं, और जो बात मैं कहती हूं उस को तुम मानती नहीं हो, फिर काम कैसे चलेगा? मेरी बात मानो, नहीं तो मैं देखती हूं, अनरथ हुआ चाहता है। [illegible] ली, ऐसी

पारबती। मेरे घर आज तक कोई ओझा न [illegible] आ [illegible] देवहूती के बाप कहा करते, जिस घर में ओझा का [illegible] जिस [illegible] ातों

वह घर चौपट हुआ ! फिर मैं तेरी बात कैसे मानूं। पर हां जो कोई दूसरा ऐसा मिले, जो मुझ दुखिया को इस दुख में सहारा दे सके तो तू जा उस को लिवा ला, मैं तेरा बहुत निहोरा मानूंगी।

बासमती। ओझा होने ही से क्या होता है, क्या सभी ओझे थोड़े ही बुरे होते हैं, फिर भले बुरे किस में नहीं होते। मैंने कई एक ऐसे बैद और पंडित भी देखे हैं, जिन का नाम लेते पाप लगता है, तो क्या इस से सभी बैद और पंडित बुरे हो जावेंगे ? यह मैं मानती हूं, हरलाल जात का कोहार है, और ओझा है। पर कोहार और ओझा होने ही से वह बुरा भी है, यह मैं कभी नहीं मान सकती। फिर हरलाल बैदई भी तो करता है, जब बड़े बैद महाराज नहीं हैं, तो ह[illegible] को आप बैदई के लिये ही क्यों नहीं बुलातीं। [illegible] होने से क्या बैदई करने के लिये भी वह नहीं बुलाया [illegible]ा।

[illegible]ती। जिन लोगों में बहुत लोग बुरे होते हैं, [illegible] उन में [illegible] अच्छे भी हों तो उन के बुरे होने ही का डर रहत[illegible] [illegible]र जिन लोगों में बहुत लोग अच्छे होते हैं उन में [illegible] [illegible]र बुरे भी हों तो इस बात की खटक जी में [illegible] नहीं होती। पंडित और बैदों में बहुत लोग भले और अच्[illegible]ते हैं, इस से उन में जो कोई बुरा भी हो तो, पहले ही उस से जी नहीं खटकता। पर ओझा लोग [illegible] लग-भग सभी बुरे होते हैं, और उन में जो बहुत कर के [illegible] हुआ करते हैं, इस से पहले तो उन में भलाई होती [illegible] और जो दो एक कोई भला हो भी तो, मन को उस [illegible] [illegible]! इस [illegible] [illegible] रहना [illegible] ही चाहता है। [illegible] देखते सारा घर महकने लगा आया था, इस लिये

[illegible] के पास हाथ उस ने यह भी

इसि- इस घड़ी मैं बावली बनी हूं, मेरा कलेजा कसक रहा है, मेरा बच्चा अचेत खाट पर पड़ा है, भाग की खुटाई से वैद जी घर नहीं हैं। इस लिये जा ! तू जा ! ! जो वह वैदई भी करता है, तो उसी को लिवा ला। वह साठ बरस का बूढ़ा भी है। पर मैं बड़े दुबिधे में पड़ी हूं, जो मेरे पती का वचन नहीं है, उस को कर रही हूं, कहीं ऐसा न हो, जो मुझे कुछ धोखा हो !!!

बासमती। मैं जाती हूं, आप सब बातों में खटकती बहुत हैं, पर ऐसा न चाहिये, कभी कभी हम लोगों की भी परतीत करनी चाहिये। आप देखेंगी, हरलाल आते ही बाबू को अच्छा करदेगा।

यह कह कर वह वहां से चली गई।

## पांचवीं पंखड़ी।

बासमती जाने के कुछ ही पीछे हर लाल को लौट आई। हरलाल छड़ी से टटोल टटोल कर पां हुये घर में आया। उस के आते ही पारबती और का वहां से हट कर कुछ आड़ में बैठ गई, पर पड़ोस आप इसतिरियां पहले ही की भांत लड़के की सम रहीं। हरलाल घर में आ कर सीधे लड़के हुई देख कर चला गया, पहले उस ने उस हकता नहीं, लड़का अचेत है, वैद जी आज घर नहीं हैं जो उन को बुला लाकर दिखलाऊं, और जो बात मैं कहती हूं उस को तुम मानती नहीं हो, फिर काम कैसे चलेगा ? मेरी बात मानो, नहीं तो मैं देखती हूं, अनरथ हुआ चाहता है। चकर

पारबती। मेरे घर आज तक कोई ओझा न ठनाई से देवहूती के बाप कहा करते, जिस घर में ओझा का आकाश

गया है, और अब तक निकल रहा है, इस से इन का मान इस घड़ी बड़ी जोखों में है। मैं क्या करूं क्या न करूं कुछ समझ में नहीं आता, जो चला जाऊं तो कल्ह सब को मुंह कैसे दिखाऊंगा, और जो जतन और उपाय करने लगूं, तो जी को एक बड़ा भारी खटका होता है। पर दुरगा माई जो करें, जो मैं आ गया तो बिना कुछ किये अब न जाऊंगा। हां! यह बात मैं कहे देता हूं, मुझ को बल भरोसा दुरगा माता का है, जो कुछ मैं करूंगा उन्हीं के भरोसे करूंगा, बिना उन का सुमिरन किये मैं कुछ नहीं कर सकता, बिपत में उन्हीं का नाम सहाय होता है, उन्हीं का नाम लेने से दुख कटता है, इस लिये अब मैं दुरगा माता का सुमिरन करूंगा, तूं थोड़ा सा धूप, गूगुल, ला दे।

पारबती की इस घड़ी बुरी गति थी, बेटे की बुरी दसा देख सुन कर उस का कलेजा फट रहा था, आंखों से लहू गिर रहा था, रह रह कर जी बावला होता था। इसी बीच हरलाल ने अपना टंटघंट फैलाया, आया था बैदई करने ओझाई करने पर उतारू हुआ। यह देख कर पारबती के रोयें रोयें में आग लग गई, उस का जी जल भुन गया, पर वह करे तो क्या करे, चुपचाप [illegible] सब कुछ सहना पड़ा। बिपत साम्हने खड़ी है, लड़का अचेत खाट पर पड़ा है, भांत भांत की बातें जी में उपज रही हैं, न जाने कहां कहां जी जा रहा है, ऐसे बेले दुरगा माता का सुमिरन करने को कौन रोक सकता है। जी न होने पर भी पारबती ने घर में से धूप वो गूगुल ला कर मालिन [illegible]। धूप गूगुल को पा कर हरलाल के जी की अटक [illegible] द के पास हाथ से उस ने यह भी उस ने आग मंगा कर उस पर धूप और [illegible]आ ही चाहता है। देखते ही देखते सारा घर महँकने लगा आया था, इस लिये

ही पीछे एक सुरीले गले का सुर चारो ओर फैल गया। हर-
लाल ने सुमिरन के बहाने गाया ।

गीत ।

दुरगा माता सीस नवाता हूं चरनों पर तेरे ।
मैं हूं दास तुम्हारा दया करो तुम ऊपर मेरे ॥
पार नहीं पाता है कोई बकते हैं बहुतेरे ।
अपना भला देखता हूं जस गा कर सांझ सवेरे ॥
मुझ में नहिं ऐसी करनी है जो तू आवै नेरे ।
अपनी ओर देख कर माता तू मत आंखें फेरे ॥
कितने दुख कट जाते हैं जो तुमें नेह से टेरे ।
लिये तुम्हारा नाम बिपत भी रहती है नहिं घेरे ॥
लाज आज जाती है जो हम करें उपाय घनेरे ।
जन की पत रह जाती है पर तनक तुमारे हेरे ॥
यही आस मेरे जी में है क्या तू नहीं निबेरे ।
जग में सब कुछ पाते हैं तेरे चरनों के चेरे ॥ १ ॥

सुमिरन करने पीछे हरलाल ने लड़के के सर और छाती पर हाथ फेरा, कुछ पढ़ कर दो तीन बार फूंका, फिर थोड़ी सी मली हुई पत्तियां मालिन के हाथ में देकर कहा, इस को पीस कर अभी बाबू के घाव पर लगा दे। पत्तियां भी पीसी जा रही थीं, इसी बीच लड़के ने आंखें खोल दीं, और धीरे धीरे करवट भी ली। लड़के को आंखें खोलते और [illegible] लेते देख कर सब के जी में जी आया। पार-[illegible]ो भी बहुत कुछ ढाढ़स हुआ।

[illegible]नुष सुमिरन करने लगा, और उस का बहुत [illegible]में से निकल कर बाहर फैलने लगा, उस

नहीं हो, फिर का
मैं देखती हूं, अनर
पारवती । मेरे
देवहूती के बाप कहा करते, । जो

घड़ी पारवती घर सी गई। उस ने सोचा जो कोई इस सुनता होगा, क्या कहता होगा, एक भलेमानस के घर में इतनी रात गये यह कैसा गीत हो रहा है? क्या यह विचार उस के जी को डावांडोल न करता होगा? जो डावांडोल करता होगा, तो वह हमलोगों को क्या समझता होगा? भले घर की बहू बेटी तो कभी न समझता होगा, क्या इस से भी बढ़ कर और कोई दूसरी बात लाज की है? क्या यह हमलोगों के लिये धरती में गड़ जाने की बात नहीं है? पारवती जितना ही इन बातों को सोचने लगी, उतना ही दुखी होती गई। उस का जी कहता था अभी हरलाल को घर के बाहर निकाल दूं। पर एक तो उस का नेह के साथ दुरगा माता का सुमिरन कलेजे को पिघला रहा था, दूसरे लड़के की बुरी दसा ने उस को आपे में नहीं रक्खा था, इस लिये वह जैसा सोचती थी, कर नहीं सकती थी। जब सुमिरन के पूरा होते होते दो चार बार झाड़ फूंक करते ही से लड़के ने आंखें खोल दीं, उस घड़ी पारवती पहले की सब बातें भूल गई, और हरलाल की उस को बहुत कुछ परतीत हुई।

जब बासमती हरलाल को लेने गई। उस बेले पड़ोस की दोनों इसतिरियों ने लड़के के सर को भली भांत धो धाकर उस पर कपड़े की पट्टी बांध दी थी। इस पट्टी को ठहर ठहर कर वह दोनों भिगो रही थीं, हरलाल ने आते ही यह सब देख लिया था, और नाक के छेद के पास हाथ ले जाकर और इसी भांत की दूसरी जांचों से उस ने यह भी जान लिया था, लड़के को चेत अब हुआ ही चाहता है। वह अपना रंग जमाने के लिये ही आया था, इस लिये

इस काम न निकाल कर उस ने अपनी ओझाई को चमकाना चाहा, और ऐसा ही किया, पीछे उस ने पत्तियां कुछ दी थीं, पर यह दिखलाता था, यह पत्तियां भी ऐसी ही वैसी थीं, कहने सुनने से लेता आया था, पर बात वही हुई, जो वह चाहता था, पत्तियां लगाई तक नहीं गईं, और लड़के ने आंखें खोल दीं। हरलाल की ओझाई ही पक्की रही।

लड़के को आंखें खोलते देख कर हरलाल की नस नस फड़क उठी, उस ने समझा अब मैं ने सब के ऊपर अपना रंग जमा लिया, इस लिये अब वह अपनी दूसरी चाल चला। सब के देखते ही देखते वह हाथ पैर नचाने लगा, सर हिलाने लगा, आंखें निकाल लीं, मुंह को डरावना बना दिया और रह रह कर ऐसा तड़पता था, जिस को सुन कर कलेजा दहल उठता। मालिन को छोड़ कर और जितनी इस-तिरियां वहां थीं, उस का यह रंग ढंग देख कर घबरा गईं। मालिन उस की चाल को ताड़ गई। भीतर ही भीतर बहुत सुखी हुई। कुछ घड़ी अनजान सी बन कर उस का रंग ढंग देखती रही, पीछे बोली। आप कौन हैं ? ... सर अ

हरलाल। मैं काली हूं रे, काली ... बार फूंका, फिर ... काली !!! ... के हाथ में देकर कहा

बासमती ने धूप और गूगल अ... पर लगा दे। पत्तियां ... कर कहा, आप काली माता हैं ! कहा ... लड़के ने आंखें खो...

... लड़के की आंखें

हरलाल। कहां आई हूं रे, कहां आई हूं, इसी हरल-लवा ने बुलाया है, इसी के मारे आई हूं, यह मुझे इसी भांत जहां तहां बुलाया करता है, यह नहीं जानता, इस लड़के ने अपनी करनी का फल पाया है, मैं इसे छोड़ थोड़े ही सकती हूं।

वासमती। आग पर धूप गिराते गिराते बोली।...ी। आप ही का है, इसे जो आप न छोड़ेंगी, तो हमलोगें .. जीयेंगी। इस से जो चूक हुई होगी, अनजान में हुई होगी, और जो जान में भी कोई चूक हुई हो, तो उस को जो आप न छमा करेंगी, तो हमलोगों को दूसरा किस का भरोसा है।

हरलाल। अनजान! अनजान!! अनजान!!! अनजान रे अनजान! जो अनजान में कोई बात हुई होती, तो मैं इतना बिगड़ती क्यों? अब के छोकरे देवी देवता को कुछ समझते ही नहीं। परसों यह जूता पहने मेरे मन्दिर के चौतरे पर बेधड़क चढ़ गया। तनिक भी न डरा। यह न समझा, कलजुग है तो क्या, अब भी देवी देवता में बहुत कुछ सकत है।

वासमती। सकत है क्यों नहीं माता! यह कौन कहता है सकत नहीं है!!! पर मैं पांव पड़ती हूं, नाक रगड़ती हूं, मत्था नवाती हूं, आप इस लड़के की चूक छमा करें! इस लड़के ने चूक तो बहुत बड़ी की है, पर आप की छमा के आ... की चूक कुछ नहीं है। जो आप इस लड़... माई वातें भूल ... तो हम ... आप के मन्दिर में ... री ...तीत हुई। ... न ... ी।

जब वासमती हर... ी

दोनों इसतिरियों ! छमा... छमा !!! ऐसे ही ...

...र उस पर कपड़े ... छमा करोगी माता! जो ... वास-

कहे..., ... ...त हो न वह करेंगी, हम को जाता,

चाहिये। ... वा... . इतना कह कर

हरलाल। अजाने लगफ्पा, पारवती ने उस को

बताती हूं, वह कहा था।

कभी इस लड़के

...ना किया है, जो लड़के की आंखें खुल गईं, नहीं अब इस की आंखें न खुलतीं। मेरे ही कोप से आज यह उस भीड़ में उस टूटे हुये तारे पर गिरा, और इस का सर फूटा। जो मैं उपाय बतलाती हूं जो वह न होगा, तो यह कभी न अच्छा होगा। और जो उपाय होने लगेगा तो यह दिन दिन अच्छा होता जावेगा। क्यों क्या कहती है? बोल!!!

बासमती। मैं क्या कहूंगी माता! जो आप कहेंगी वही होगा, कभी कुछ दूसरा भी हो सकता है। इस लड़के से बढ़ कर हमलोगों को क्या प्यारा है।

हरलाल। अच्छा सुन रे सुन! जो तू करेगी तो मैं बताती हूं। देवहूती के गुन पर मैं रीझी हुई हूं, जो वह सौ अधखिला फूल अपने हाथों से तोड़ कर एक महीने तक मुझ को नित्त चढ़ावे, तब तो मैं उस के निहोरे इस छोकरे को छोडूंगी, नहीं तो किसी भांत न मानूंगी। बोल! क्या कहती है, ऐसा होगा!!!

...बासमती। क्यों न होगा महारानी! यह कौन बड़ा देखती रही जो कोई बड़ा क[illegible] उपाय आप बतलातीं, तो हरके के बचाने के लि[illegible] सब वह भी करतीं। इस काली!!है।

बासमती। अच्छा जो तू म[illegible] बात मानती है तो ले मैं कर कहा, आप जान ले जो मेरी [illegible] न हुई तो छ ही सात

हरलाल। [illegible] लड़का ऐसी जहां [illegible] पड़ेगा, जिस से लवा ने बुलाया है, इसी क[illegible]गा। [illegible] हूं, य[illegible]

जहां तहां बुलाया करता है, यह नहीं जानता फिर पहले का अपनी करनी का फल पाया है, मैं इसे [illegible]ता था, और न सकती हूं।

उस में वह सब डरानेवाली बातें ही रह गई थीं। इस घड़ी वह बहुत ही धीरा पूरा जान पड़ता था, पर उस के मुंह पर घबराहट रूखेपन के साथ झलक रही थी।

पारवती हरलाल का अगुआना देख कर और उस की बातें सुन कर बड़े झंझट में पड़ गई, पहले हरलाल के ऊपर जो उस का विचार था, उस के सुमिरन का ढंग देख कर और लड़के को कुछ सम्हला और चेत में आया पाकर, अब वह और भांत का हो गया था। अब वह हरलाल को एकंढी न समझ कर भलामानस समझने लगी थी, इस लिये उस ने उस की बातों को धोखाधड़ी की बात न समझ कर निरी सच्ची बात समझा, और अपने लड़के की करनी पर बहुत दुखी हुई। पर सब से झंझट की बात उस के लिये सौ अधखिले फूलों से एक महीने तक देवी की पूजा हुई। वह मन ही मन इन सब बातों को सोच रही थी। इसी बीच हर-लाल ने फिर थोड़ी सी और कोई पत्ती मालिन के हाथ में दे कर कहा, अब मैं जाता हूं, तुम इस पत्ती को दो चार बार और बाबू की घाव पर रगड़वा कर लगवाना, माई चाहेंगी तो वह इसी से अच्छे हो जावेंगे, अब कोई दूसरी औखध न करनी पड़ेगी। मेरा बड़ा भाग है जो मेरे हाथों बाबू का कुछ भला हुआ, पर आज मैं बड़े जोखों में पड़ गया, ऐसा अचानक माता कभी मेरे ऊपर नहीं आई, बास-मती! जो तू न सम्हालती तो न जानें आज क्या हो जाता, देखना उन की भेंट पूजा की बात न भूलना। इतना कह कर वह चला गया, जब वह जाने लगा था, पारवती ने उस को बासमती के हाथ कुछ दिया था।

## छठवीं पंखड़ी।

भोर के सूरज की सुनहरी किरनें धीरे धीरे आकास में फैल रही हैं, पेड़ों की पत्तियों को सुनहरा बना रही हैं, और पास के पोखरे के जल में धीरे धीरे आकर उतर रही हैं। चारों ओर किरनों का ही जमघटा है, छतों पर मुड़ेरों पर किरनही किरन हैं। कामिनी मोहन अपनी फुलवारी में टहल रहा है, और छिटिकती हुई किरनों की यह लीला देख रहा है। पर अनमना है। चिडियां चहकती हैं, फूल महक रहे हैं, ठंढी ठंढी पौन चल रही है, पर उस का मन इन में नहीं है। कहीं गया हुआ है। घड़ी भर दिन आया, फुलवारी में बासमती ने पांव रक्खा, धीरे धीरे कामिनीमोहन के पास आ कर खड़ी हुई। देखते ही कामिनीमोहन ने कहा, क्या अभी सो कर उठी हो?

बासमती। हां! अभी सो कर उठी हूं!!! यह तो आप न पूछेंगे! क्या रात जागते ही बीती?

कामिनीमोहन। क्या सचमुच बासमती तुम आज रात भर जगी हो? जान पड़ता है इसी से तुम्हारी आंखें लाल हो रही हैं।

बासमती। नहीं तो क्या अभी सो कर उठी हूं! इस से आंखे लाल हैं!!

कामिनी मोहन। मैं तुम को छेड़ता नहीं बासमती! मैं भी यही कहता था, रात भर तुम जगी हो, इसी से अब तक क्या सोती रही हो! अच्छा इन बातों को जाने दो। कहो रात क्या किया?

बासमती। मैं ने रात सब कुछ किया, आप की सब

अड़चलें दूर हो गईं। मुझ को जो कुछ करना था, हो चुकी, अब देखूं आप क्या करते हैं।

कामिनी मोहन। वह क्या वासमती ?

वासमती। क्या आप ने देवकिसोर बाबू की बात नहीं सुनी ?

कामिनीमोहन। हां! इतना तो सुना है, वह रात टूटे हुये तारे के ऊपर गिर पड़ा, और उस का सर फूट गया।

वासमती। सर क्या फूट गया, यह कहिये थोड़ी चोट आ गई थी, पर बड़े लोगों की बातें ही बड़ी होती हैं और वह सकुआर भी बहुत हैं, इसी से थोड़ा सा लहू निकलते ही अचेत हो गये, नहीं तो कोई बात नहीं थी। दूसरा कोई होता तो उंह भी न करता।

कामिनीमोहन। तो फिर मुझ को इस से क्या ?

वासमती। क्यों ? इस से ही तो आप का सुभीता हुआ ? इस कामदी ने तो आप के पथ के सब कांटों को दूर कर दिया।

कामनीमोहन। कैसे ?

वासमती। आप जानते हैं हरलाल कैसे हथकंडे का है, आप के काम के लिये मैं ने उस को बहुत दिनों से गांठ रक्खा था. पर यह सोचती थी, जब तक वह किसी भांत [illegible]वती ठकुराइन के घर में पांव न रखेगा, काम न निकलेगा, [illegible] मैं ने देवकिसोर बाबू के गिरने और सर में चोट लगने की बात सुनी, उसी घड़ी मुझ को एक बात सूझी, मैं उस को पूरा करने के लिये चट घर से उठी, और हरलाल के पास पहुंची, उस को ठीक ठाक कर के, लगे पांव देवकि[illegible]

हते

अब इस .. घर गई। भाग से बैद महाराज भी कलह कहीं गये उस .. थे, इस लिये मैं ने बातों में फांस कर पारबती ठकुराइन को अपने रंग में ढाल लिया, और उन्हीं के कहने से हरलाल को उन के घर लिवा गई। मैं जब हरलाल को लेने जाती थी पथ में आप से भी मिलती गई थी, पर उस घड़ी आप से कुछ कहा नहीं था। यह आप जानते हैं। हरलाल ने वहां पहुंच कर सब कुछ कर दिया।

कामिनीमोहन। क्या कर दिया ! कहो भी तो ?

बासमती। हरलाल ने वहां पहुंच कर देवकिसोर बाबू के सर की चोट को भली भांत देखा, देख कर जाना, बहुत थोड़ी चोट है, गीला कपड़ा बांध कर जो रह रह कर पानी उस पर दिया जाता है, यही उस को अच्छा कर देगा। पर दिखलाने को वह झूठ मूठ जतन करने लगा। एक दिन उस ने काली माई के चौरे पर देवकिसोर बाबू को जूता पहने चढ़ते देखा था, यह बात उस को भूली न थी, इसलिये इसी बहाने से उस ने एक ऐसी नई उपज निकाली, जिस से आप का काम भली भांत निकल आया।

कामिनीमोहन। वह कैसे ?

बासमती। ने हरलाल के अभुआने की सारी बातें ज्यों की त्यों कामिनीमोहन से कह सुनाई। पीछे कहा। हरलाल के चले जाने पर पारबती ठकुराइन ने देवकिसोर के पास जाकर पूछा, बेटा तुम कभी काली माई के चौरे पर जूता पहने चढ़ गये थे। लड़के ने कहा हां अम्मा मुझ से एक .. यह चूक हो गई थी। इतना सुनतेही ठकुराइन के रोंगटे .. गये, हरलाल की उन को बहुत कुछ परतीत हुई।

यह कुछ घड़ी चुपचाप न जानें क्या सोचती रहीं, फिर बोलीं, बासमती! हरलाल ने सौ अधखिले फूल चढ़ाने को तो कहा, पर यह न बतलाया, किस का फूल! मैं ने कहा, क्या यह भी बतलाने की बात है। कौन नहीं जानता, कालीमाई को अड़हुल का फूल ही प्यारा है इस लिये सौ अड़हुल का अधखिला फूल ही एक महीने तक चढ़ाना होगा। उन्हों ने कहा इतने फूल मिलेंगे कहां! मैं ने कहा कामिनीमोहन बाबू की फुलवारी में कौन फूल नहीं है, नित्त सौ नहीं पांच सौ अधखिले फूल अड़हुल के वहां मिल सकते हैं। मेरी इन बातों को सुन कर ठकुराइन फिर कुछ घड़ी चुप रहीं, बहुत सोच बिचार करने पीछे बोलीं, क्या और कहीं नहीं मिल सकते? मैं ने कहा इस गांव में और कहां इतने फूल मिलेंगे। उन्हों ने कहा अच्छा वहीं से फूल आवेंगे, पर कब फूल तोड़े जावें जो वह अधखिले मिलें। मैं ने कहा जो सूरज डूबते डूबते फूल उतार लिये जावें, तो वह अधखिले ही रहेंगे, पर उस बेले देवहूती को वहां जाकर फूल तोड़ लाना चाहिये, नहीं तो रात में फूल तोड़ते नहीं और दिन निकलने पर फिर वह फूले हुये ही मिलेंगे। ठकुराइन ने कहा यही तो कठिनाई है, पर करूं क्या, समझ नहीं सकती हूं, जैसा मैं आज दुबिधे में पड़ी हूं, वैसा दुबिधे में कभी नहीं पड़ी। मैं ने मन में कहा, बासमती फिर क्या ऐसा फंदा डालती है, जो कोई उस से बाहर निकल जावे, जो ऐसाही होता, तो कामिनीमोहन बाबू मेरी इतनी आवभगत क्यों करते, पर इस मन की बात को मन ही में रख कर उन से बोली, क्या आप को किसी बात का खटका है, मेरे रहते

आप को किसी काम में कठिनाई नहीं हो सकती, मैं आप
आकर देवहूती को लिवा जाऊंगी, और उन से फूल तुड़वा
लाया करूंगी, क्यां मुझ से एक महीने तक इतना काम भी
न हो सकेगा। उन्हों ने कहा, क्यों नहीं वासमती ! तुम सब
कुछ कर सकती हो, मुझ को तुम्हारा बड़ा भरोसा है, अच्छा मैं
तुमारे ही ऊपर इस काम को छोड़ती हूं, जैसे बने बनाओ,
पर ऐसी कोई बात न होवे जिस से फिर देवकिसोर को कुछ
झेलना पड़े। मैंने कहा, आप इन बातों को न घबरावें, भग-
वान सब अच्छा करेगा। इस के पीछे यह बात ठीक हो गई,
मैं देवहूती के साथ साथ रह कर फूल तुड़वा लाया करूंगी,
कलह से यह काम होने लगेगा। मैंने जतन कर के देवहूती
को आप की फुलवारी तक पहुंचा दिया। अब आगे आप
की बारी है, देखूं आप कैसे उस अलबेली को लुभाते हैं,
आकास का चांद घर में आया है, उस को बस में कर
रखना आप का काम है, मैं यही बात पहले कहती थी।

कामिनीमोहन वासमती की बातें सुन कर फूला न
समाता था, आज उस के जी में यह बात ठन गई, अब ले
लिया है। हँसते हँसते बोला, क्यों न हो वासमती ! तुमारा
ही काम है, तुम ने बहुत कुछ किया, जो कुछ मुझ से हो सकेगा,
मैं भी करूंगा, पर सब कुछ करने का बीड़ा तुम्हीं ने उठाया
है, इस लिये सब कुछ तुम्हीं को करना होगा।

वासमती यह नहीं हो सकता, अब आप को भी कुछ
करना होगा। पौन का काम मैं करूंगी, पर आग आप को
लगानी पड़ेगी।

कामिनीमोहन। क्या उस को जला कर मिट्टी में थोड़े
मिलाना है।

वासमती । क्या यह भी मैं कहूंगी, तब आप जी।
पर यह बातें काम की नहीं हैं। मैं नेह की आग लगाने को
कहती हूं, जिस को पौन बन कर मैं सुलगाऊंगी ।

कामिनीमोहन । क्या उस का कलेजा ऐसा है, जो नेह की आग मैं वहां लगा सकूंगा ।

वासमती । क्यों ? क्या वह लोहे और पत्थर से थोड़े ही बना है ? फिर आग लगानेवाले तो लोहे और पत्थर में भी आग लगाते हैं । ढंग चाहिये ।

कामिनीमोहन । लोहे और पत्थर में आग लगाना, काम रखता है । मैं समझता हूं वासमती ! देवहूती का कलेजा सचमुच लोहे पत्थर का है । उस में आग लगाना कठिन है ।

वासमती । आप की बातें ऐसी ही होती हैं, चाहते हैं बहुत कुछ करते कुछ नहीं । उस का कलेजा मक्खन से भी बढ़ कर पिघलने वाला है, आप इस बात को नहीं जानते, मैं जानती हूं । अब मैं जाती हूं, आप अपनी सी करिये, जो न बनेगा, उस को मैं तो ठीक कर ही दूंगी । यह कह कर वासमती वहां से चली गई । अकृत।

## सातवीं पंखड़ी ।

चमकता हुआ सूरज पच्छिम ओर आकास में धीरे धीरे डूब रहा है । धीरे ही धीरे उस का चमकीला उजला रंग लाल हो रहा है । नीले आकास में हलके लाल बादल चारों ओर छूट रहे हैं। और पहाड़ की ऊंची उजली चोटियों पर एक फीकी लाल जोत सी फैल गई है । जो घर की मुंडेरों की ऊपर उठती हुई धूप को पकड़ कर किसी ने काल

आप को रंग दिया है, तो पेड़ों की हरी हरी पत्तियों पर भी ललाई की वह झलक है, जो देखने से काम रखती है। लाल फूलों का लाल रंग ही औसर पा कर चटकीला नहीं हो गया। पीले, उजले और नीले फूलों में भी ललाई की छींट सी पड़ गई है। धरती की हरी हरी दूबों, नदी, तालाब, पोखरों, की उठती हुई छोटी छोटी लहरों, बेल बूटों और झाड़ियों की गोद में छिपी हुई एक एक पत्तियों तक में ललाई अपना रंग दिखला रही है। जान पड़ता है सारे जग पर एक हलकी लाल चांदनी सी तन गई है।

एक बहुत ही बड़ी और सुहावनी फुलवारी है। उस के एक ओर बहुत से अड़हुल के पौधे लगे हुये हैं। यह सब पौधे जी खोल कर फूले हैं—हरी हरी पत्तियों में इन फूले हुये अनगिनत फूलों की बड़ी छटा है—जान पड़ता है चारों ओर ललाई का ऐसा समां देखकर ही इन फूलों पर इतना जो बन है। इन्हीं बहुत से फूले हुये फूलों में कुछ फूल अधखिले से हैं, इन पौधों के पास खड़ी एक अधेड़ इसतिरी इन अधखिले फूलों को उंगली से बताती जाती है, और एक बहुत ही सुघर और लजीली लड़की ~~क्यों~~ ने लाल लाल हाथों से सहज सहज उन फूलों को तोड़ रही है। उस का मुंह डूबते हुये सूरज की ओर है, जिस लाली ने सारी धरती को अपने रंग में डुबो कर, चारों ओर एक अनूठी छटा फैला रक्खी है। वही लाली इस खिली चमेली सी लड़की की देह की छवि को भी दूनी कर के दिखला रही है। इस भोली भाली लड़की के गोरे गोरे गालों पर इस घड़ी जो अनूठी और निराली छवि है, कहते नहीं बनती, उस की सहज लाली दूनी तिगुनी हो गई है, जिस को देख कर जी का भी जी नहीं भरता।

पर उस को बिना झंझट देखना आंखों के भाग में बदा नहीं है, लड़की ने सर के कपड़े को कुछ आगे को खींच रक्खा है, यही कपड़ा जी भर कर उस छवि को देखने नहीं देता। जब पौन धीरे धीरे आकर उस कपड़े को हटाती है, उस घड़ी उस के कांच से सुथरे गालों की अनोखी लाली आंखों में रस की सोत सी बहा देती है।

इन अड़हुल-फूल के पौधों के ठीक सामने पच्छिम ओर थोड़ी ही दूर पर एक बहुत ही ऊंची अटारी है। अटारी में पूरब ओर को तीन बड़ी बड़ी खिड़कियां हैं, इन्हीं खिड़कियों में से बीच वाली खिड़की पर कोई छिपा हुआ बैठा है—और छिपे ही छिपे, डूबते हुये सूरज की, फूली हुई फुलवारी की, चारों ओर फैली हुई लाली की, और उस सुघर सजीली लड़की की, अनूठी छटा देख रहा है। डूबते हुये सूरज, चारों ओर फैली लाली, और भांत भांत के फूलों वाली फुलवारी के देखने से उस के जी में जो रस की एक छोटी सी लहर उठती है, और इस से जो सुख उस को होता है, किसी भांत बतलाया जा सकता है। पर उस सुघर और छबीली लड़की के देखने से, उस के गोरे गोरे गालों की बढ़ी हुई अनूठी लाली पर, किसी भांत डीठ डालने से, जो एक रस की धारा सी उस के कलेजे में बह जाती है, उस का सुख न किसी भांत बतलाया जा सकता, न लिखा जा सकता। वह इस धारा में अपने आपे को खोकर धीरे धीरे आप भी बह रहा है—और साथ ही अपने सुध बुध को भी चुपचाप बहा रहा है।

जिस घड़ी हम ने लड़की को फूल तोड़ते देखा था, वह पिछली बारी थी—जितना फूल उस को तोड़ना चाहिये था,

यह तोड़ चुकी—इस लिये अब वह घर की ओर चली, पीछे पीछे वह अधेड़ इसतिरी भी चली। सांझ का समै, चिड़ियां चारों ओर मीठे मीठे सुरों में गा रही थीं, भांत भांत के फूल फूल रहे थे, ठंढी ठंढी पौन धीरे धीरे चल रही थी, भीनी भीनी महंक सब ओर फैली थी, जी मतवाला हो रहा था। साथ की अधेड़ इसतिरी समै पर चूकनेवाली न थी, अपनी मिट्टी जमाने का औसर देख कर बोली। देवहूती! देखो कैसा सुहावना समै है! कैसी निराली सोभा है! पर सांझ क्यों इतनी सुहावनी है? उस में क्यों इतनी सोभा है? क्या तुम इस को बतला सकती हो? सांझ का समै बहुत थोड़ा है—पर इस थोड़े समै में भी जितना प्यार और आदर उस का हो जाता है—और समै का होते देखने में नहीं आया। पर क्या यह गुन उस में यों ही है? नहीं योंहि नहीं है! वह अपने थोड़े समै को जैसा चाहिये उसी भांत काम में लाती है—इसी से वह इतने ही समै में अपना बहुत कुछ नाम कर जाती है। देखो वह आते ही, चांद से गले मिलती है—पौन का कलेजा ठंढा करती है—फूलों को खिला देती है—चिड़ियों को मीठा सुर सिखलाती है—पेड़ों को हरा भरा बनाती है—आकास को तारों से सजाती है—लोगों की दिन भर की थकाहट निवारती—और चारों ओर चहल पहल की धूम सी मचा देती है। सच है समै रहते ही सब कुछ हो सकता है, समै निकल जाने पर कुछ नहीं होता। पर देखती हूं देवहूती तुम्हारा समै योंही निकला जाता है, तुम्हारा यह र [illegible]! यह जोबन!! और कोई प्यार करने वाला नहीं! [illegible]ा चाहिये वैसा आदर नहीं!!! क्या इस से बढ़ कर कोई और दुख की बात हो सकती है?

देवहूती ने ठंढी सांस भरी, उस की आंखों में पानी आया, पर कुछ बोली नहीं, जी बहलाने के लिये इधर उधर देखने लगी। वहीं सामने फूले हुये कई पेड़ों की झुरमुट में एक बहुत ही सजीला जवान दिखलाई पड़ा, यह धीरे धीरे उन पेड़ों में टहल रहा था, और सांझ की धीरे बहनेवाली पौन उस के सुनहुले दुपट्टे को इधर उधर उड़ा रही थी। इस जवान की दोहरी गठीली देह पर सुघराई फिसली पड़ती थी, गोरा रंग तपे सोने को लजाता था। बड़ी बड़ी रसीली आंखें जी को बेचैन करती थीं, और ऊंचे चौड़े माथे पर टेढ़े टेढ़े बाल कुछ ऐसे अनूठेपन के साथ बिखरे थे, जिन के लिये आंखों को उलझन में डाल देना कोई बड़ी बात न थी। भौंहें घनी और आंखों के ऊपर ठीक धनुख की भांत बनी थीं; पर रह रह कर न जाने क्यों सिकुड़ती रहती थीं। मुंह का डौल, बहुत ही अच्छा, बहुत ही अनूठा, और बहुत ही लुभावना था, पर उस की निखरी गोराई में लाली के साथ पीलापन भी झलक रहा था। गला गोल, छाती चौड़ी और ऊंची, बाहें भरी वो लांबी, और उंगलियां बहुत ही सुडौल थीं। देह की गठन, बनावट, लुनाई, सभी बांकी और अनूठी थी। देह के कपड़े, हाथों की अंगूठियां, पांव के जूते, सभी अनमोल और लुहावने थे। इस पर जो पेड़ों से उस के ऊपर फूलों की बरखा हो रही थी, समां दिखलाती थी। देवहूती की आंख जिस घड़ी उस के ऊपर पड़ी वह सब भूल गई, सुध बुध खो सी गई। पर थोड़ी ही बेर में काया पलट हो गया। जिस घड़ी उस की आंख इस की ओर फिरी और चार आंखें हुईं, देवहूती चेत में आ गई। और आंखों को नीची कर लिया।

को यह साथ की इसतिरी जो बासमती छोड़ दूसरी नहीं है, यह सब देखकर मन ही मन फूल उठी, उस सजीले जवान का जी भी अधखिली कली की भांत खिल उठा, दोनों ने समझा रंग जैसा चाहिये वैसा जम गया। पर इस घड़ी देवहूती के जी की क्या दसा थी, इस की छानबीन ठीक ठीक न हो सकी। धीरे धीरे सूरज डूबा, और धीरे ही धीरे देवहूती बासमती के साथ फुलवारी से बाहर हो कर घर आई। पर उस का जी न जानें कैसा कर रहा है।

यह सजीला जवान कामिनीमोहन है, यह तो आप लोग जानही गये होंगे। अटारी पर खिड़की में बैठा हुआ यही देवहूती की छटा देख रहा था—और उस की छटा देख कर जो उस पर बीती आप लोगों से छिपा नहीं है। पर वहां बैठे बैठे देवहूती पर वह अपना बान न चला सका, इसीलिये जब देवहूती फूल तोड़ कर चली, तो वह भी चट कोठे से उतर कर पेड़ों की झुरमुट में आया, और टहलने लगा। यहां कुछ उस के मन की सी हो गई, यह आप लोग जानते हैं।

———

## आठवीं पंखड़ी।

फूल तोड़ने के लिये देवहूती नित्त जाती, नित्त उस का जी कामिनीमोहन की ओर खींचने के लिये बासमती उपाय करती, कामिनीमोहन भी उस को अपनाने के लिये कोई जतन उठा न रखता, बनाव सिंगार, सज धज सब को काम में लाता। इस पर पेड़ों से लपटी फूली हुई बेलें, समय का सुहावनापन, हरीहरी डालियां, लहलही लतायें, छिपे छिपे अपना काम अलग करतीं। देवहूती लहू मांस से ही बनी है,

जी उस को भी है, आंखें वह भी रखती है, कहां तक
इन फंदों से बच सकती । धीरे धीरे उस का जी न जानें
कैसा करने लगा, अनजान में ही उस के कलेजे में न जाने
कैसी एक कसकसी होने लगी । पर उस के जी में भीतरही
भीतर यह सब बातें ऐसा चुपचाप और ऐसा छिप छिप
होने लगीं, जो बासमती की ऐसी चतुर इसतिरी को भी
उलझन में डाल रही थीं ।

फूल तोड़ते चौबीस दिन हो गये । इतने दिनों में काम
कुछ न निकला, यह बात बासमती के जी में आठ पहर
खटकने लगी, कामिनीमोहन भी बेचैन हो चला था, इसलिये
वह भी कभी कभी बासमती को जली कटी सुनाता, इस से
बासमती और घबराई । आज वह चुपचाप देवहूती देवहूती
आई, और सीधे उस की कोठरी में चली गई । वहां उ दिनों
देवहूती को सोया पाया, फिर क्या था, चटपट उस ने अ
काम पूरा किया, और वहां से चलती हुई । फिर

पारवती ने बासमती को आते देख लिया था ।
बासमती क्यों आई ? और क्यों लग पान चलती हुई ? इस
बात का उस को बड़ा खटका हुआ । वह कई दिनों से देव-
हूती का रंग ढंग देख रही थी, पर कोई बात जी में लाती न
थी; क्यों जी में लाती नहीं थी ? इस के लिये इस घड़ी मैं
इतनाही कहता हूं ! उस के जी में कोई खटका नहीं थी—
बासमती की आज की चाल ने उस को चौंका दिया -कोठे
सोचने लगी, हो न हो कोई बात है । बासमती संकेत
मालिन है—उस के लिये कोई रोक नहीं—व लड़की के
देवहूती के पास आ जा सकती है—मैं ने कभी
हूती के पास उठने बैठने से नहीं रोका । किसी आपलोग

र को...ख बचा कर क्यों उस के पास गई ? और क्यों बिना मुझ से कुछ कहे सुने यहां से चुपचाप चली गई ? यह बातें ऐसी हैं जिस से पाया जाता है, उस के मन में कोई चोरी है ! चोर का जी आधा होता है, वह साह का सामना नहीं कर सकता। अपने मन की चोरी ही से वह इस घड़ी अपना मुंह मुझ को न दिखला सकी। जिस काम को करने के लिये इस घड़ी वह यहां आई थी, उस काम को कर के वह मुझ से चुरी थी, इसी से मेरे सामने आने का जीवट उस में नहीं था। नहीं तो मेरे जी में तो कोई बात न थी। जो बुरा काम करता है, वह बस भर छिपने का पथ भी ढूंढ़ता है।

फिर सोचने लगी। देवहूती का रंग ढंग भी तो इन दिनों कुछ और हो गया है ? वह इतनी अनमनी क्यों रहती है ? मैं इन बातों पर डीठ नहीं डाल... ...समझती थी, लड़की है, कोई बात होगी। पर यह कोई ऐसी वैसी बात नहीं है, कोई गहरी बात जान पड़ती है। नहीं तो देवहूती को किस... ...का दुख है ? जो चाहती है, खाती है। जो चाहती ... ...हनती है। मैं उस का मुंह देखती ही रहती हूं, एक भाई ... वह भी कभी उस को आधी बात नहीं कहता, फिर वह इ...नी अनमनी क्यों ? हां यह मैं कह सकती हूं...वह सयानी हो गई है ! उस के दूसरे दिन हैं ! पर सयानी वह ...ज तो नहीं हुई है—एक बरस से भी ऊपर हो गया। ...तना दिन हो गया—और हंसी खेल ही में वह लगी ...े इधर दस पांच दिन से—सयानी होने ही से वह ...—यह बात जी में नहीं समाती। फिर पड़ोस में ...मिनीकिशोर, नन्दकिशोर, देवमोहन, कामिनी- ...है—बात चलने पर देवहूती जैसे नन्द-

जी
करती,
जतन पूछे
में लाता।
सुहावनापन,
अपना काम अलग

कुमार, नन्दकिसोर, और देवमोहन का नाम लेती है—' पर अटक कामिनीमोहन का नाम क्यों नहीं लेती? फिर मौसेरे भाई कामिनीकिशोर को जब वह पुकारती है, तो क्या कारन है जो कामिनीमोहन का नाम उस के मुंह से निकल जाता है? और जो निकल जाता है, तो फिर अपने आप वह लजा क्यों जाती है? कोई टोकता भी तो नहीं। जब घर में कभी कोई बात कामिनीमोहन की उठती है, और देवहूती वहां बैठी रहती है—तो क्या कारण है जो वह इधर उधर करने लगती है? क्यों वह वहां से उठ जाना चाहती है? क्यों उस की बातें सुनने में उस को लाज होती है! कामिनीमोहन का साथ बहुत दिनों से हमलोगों का है, ऐसे ही सदा उस की बातें घर में होती आई हैं, पर पहले देवहूती की ऐसी दसा तो कभी नहीं देखी गई!! फिर थोड़े दिनों से उस के जी का ढंग ऐसा क्यों हो गया?

अबकी बार पारबती का मुंह गंभीर हो गया, वह फिर सोचने लगी। देवहूती का ढंग था, वह चार लड़कियों को लेकर सदा खेला करती, किसी को सर गूंथना, किसी को बेलबूटे बनाना, किसी को गुड़ियां बनाना, सिखलाती—किसी को माला गूथना, किसी को फूल के गहने बनाना, किसी को पोत पिरोना बतलाती। किसी को छेड़ती—किसी को प्यार करती। पर आज कल यह सब बातें उस की छूट सी गई हैं—अकेले रहना उस को अच्छा लगता है—कोठे पर, कभी कभी अपनी कोठरी में चुपचाप बैठी न [illegible] सकते सोचा करती है। दो चार दिन से तो उस की [illegible]क लड़की के पास ही बैठी रहती है—और पुकारने पर क[illegible] भी नहीं। सच्ची बात यह है—उस का जी किसी और [illegible] [illegible]ग

है—जब वहां से हटे तब तो दूसरी ओर लगे—। किस ओर उस का जी खिंचा है—अब यह समझने को नहीं है—सब बात भली भांत समझ में आ गई। पर इस में चूक किस की है? हमारी! जो अपने पती की बात नहीं मानती, उस का भला कभी नहीं होता। पती ने कहा था, जिस घर में ओझा का पांव पड़ा, वही घर चौपट हुआ। फिर मैं क्यों उन की बात भूल गई, क्यों अपने घर में ओझा को बुलाया, जो बुलाया, तो अब भुगतेगा कौन?

पारबती ने धीरे धीरे सब समझा, कुछ घबराई, पीछे सम्हल गई, सोचा घबरा कर क्या होगा, यह घबराने का समै नहीं है, जैसा रंग ढंग देखने में आता है, उस से बात अभी बहुत बिगड़ी नहीं पाई जाती, अभी बिगड़ने के लच्छन ही देखे जाते हैं, इसलिये घबराने से बिगड़ती हुई बात के बनाने का जतन करना अच्छा है। पारबती ने सोच कर ठीक किया, चाहे जो हो अब आज से देवहूती को फूल तोड़ने के लिये न जाने दूंगी, इतना करने ही से सब झंझट दूर होगा। इसतिरी कितना हूं जीवट करे, पर देवी देवता की बात में उस का जीवट काम नहीं करती। देवकिसोर अब तक भली भांत अच्छा भी नहीं हुआ था, इस लिये ठीक करने को उस ने ठीक तो किया, पर थोड़े ही पीछे उस का जी फिर चंचल हो गया, उस ने सोचा, देवी की पूजा को अधूरा छोड़ना ठीक नहीं; जैसे हो छ दिन इस काम को और करना होगा। तो क्या बासमती भी पहले की —यह रहेगी? अब उस के जी में यह बात उठी। उस ने ठीक किया, हां! बासमती भी साथ रहेगी, जो ... इत बनी है, उस से बिगाड़ क्यों किया जाय!

जी। कर जतन में लाता। सुहावनापन, अपना काम अलग

न जानें वह क्या सोचे, और क्या करे, यह समै [illegible]
बिगाड़ करने का नहीं है। फिर सुधार क्या हुआ, वही सब
बातें तो हुई—अब यह बिचार उस को सताने लगा। पर इस घड़ी
सर उस का चकरा रहा था, और जो अड़चलें सुधार में
आन पड़ी थीं, वह सहज न थीं, इस लिये बिचार के लिये
दूसरा समै ठीक कर के वह घर के दूसरे काम में लग गई।

## नवीं पंखड़ी।

कहा जाता है, दिन फल अपने हाथ नहीं, करम का
लिखा हुआ अमिट है, हम अपने बस भर कोई बात उठा
नहीं रखते, पर होता वही है, जो होना है, जतन उपाय
ध्यान सब ठीक है—पर उस खेलाड़ी के आगे किसी की नहीं
चलती, चुटकी बजाते ही वह सब कुछ करता है और पल [illegible] हुये
मारते ही सब को बिगाड़ कर रख देता है। [illegible] खड़े हुये।
पुतले क्या हैं, जो उस की बातों में हाथ डालें! [illegible] कहा, कहीं जाता
कौन जीभ हिला सकता है। पर हम [illegible] था, उसी को दिखला
लिये हैं—जो सचमुच जी से ऐसा [illegible] हू। धीरे धीरे यह बात उन
नहीं है, जिन के भीतर क[illegible] हुची, वह और घबराई, लोग
चलता है कोई काम, [illegible] किसी को न मिले। एक एक कर के
की है। और [illegible] लगे, महीने हुये, दो बरस बीत गये, पर हर-
[illegible] ाहन फिर न लौटे। लोगों ने उन को मराही समझा,
क्योंकि न वह कहीं जा सकते थे, और न कुछ कर सकते
थे। इसतिरी का दिन अपने एक लड़के और एक लड़की के
साथ बड़े दुख से बीतने लगा।

यह इसतिरी और हरमोहन कौन हैं? यह तो आपलोग

।ख ।०४। उस खेलाड़ी को सब करने जोग कामों में अपना सहाई समझ कर जो जतन ब्योंत और उपाय करता है, वही जग में सब कुछ पाता है। जो ऐसा नहीं कर सकता वह पास की पूंजी भी गंवा देता है।

हमारे हरमोहन पांडे इसी ढंग के लोग हैं—होनहार के भरोसे बाप का कमाया लाखों रुपया उड़ा चुके हैं बीसों गांव पास थे पर एक एक कर के सब बिक चुके हैं। अब तक रहने का घर बचा था। आज उस से भी हाथ धोना चाहते हैं। बाहर बोली हो रही है, पर करम ठोंक कर आप भीतर पलंग पर पड़े हैं। उन की यह गत देख कर उन की सीधी सच्ची इसतिरी उन के पास आई। प्यार के साथ पास बैठ गई। दोनों में इस भांति बातचीत होने लगी।

इसतिरी। घर बिक रहा है—बाहर बोली हो रही है, क्या आप उस को सुनते हैं?

[illegible] हरमोहन। सुनता हूं जो भाग में लिखा है, होगा।

बनाने का [illegible] ठीक किया, चाहे [illegible] यह नहीं कहती, मैं यह [illegible] तोड़ने के लिये न जाने दूंगा, [illegible] छोड़ना होगा—उस [illegible] सब झंझट दूर होगा। इसतिरी कितना [illegible] [illegible]री देवता की बात में उस का जीवट काम [illegible] देवकिसोर अब तक भली भांत अच्छा भी नहीं [illegible] हमारा [illegible] इस लिये ठीक करने को उस ने ठीक तो किया, पर [illegible]खा है [illegible] पीछे उस

[illegible] का जी फिर चंचल हो गया, उस ने सोचा, देवी की पूजा [illegible] को अधूरा छोड़ना ठीक नहीं; जैसे हो छः दिन इस काम जत[illegible] [illegible] करना होगा। तो क्या बासमती भी पहले की में लाता। [illegible]—रहेगी? अब उस के जी में यह बात उठी। उस सुहावनापन, [illegible] ठीक किया, हां! बासमती भी साथ रहेगी, जो अपना काम [illegible] [illegible]हित बनी है, उस से बिगाड़ क्यों किया जाय!

इसतिरी। अच्छा मैं कुछ कहूं, आप मानेंगे।

हरमोहन। कहो क्या कहती हो।

इसतिरी। बंस नगर में मेरी बहन रहती है, यह आप जानते हैं, जैसी भलमनसाहत उस में है, वैसही देवता हमारे बहनोई भी हैं, यह बात भी आप से छिपी नहीं है। इन के पास दो घर हैं—एक में वह आप रहते हैं, एक यौंही पड़ा है। मेरी बहन ने हमलोगों का दुख सुना है—कुछ दिन हुये उस ने कहला भेजा था—जो घर भी बिक जावे तो वह यहां आकर रहेंगी। हमलोगों का अब यहां क्या रक्खा है—जो आप चाहें तो वहां चल सकते हैं। यहां से वहां अच्छी ही बीतेगी।

हरमोहन। तुम ने अच्छा कहा, चलो वहीं चलें। हमारे स
सोलह सौ रुपया भी तो उन के यहां है। राये हुये

इसतिरी। रुपये की बात जाने दीजिये। खड़े हुये।
लोगों ने हमलोगों को बहुत सम्हाला है। कहा, कहीं जाता
चौबीस सौ दे चुके हैं। था, उसी को दिखला

हरमोहन। अच्छा-जाने दो। धीरे धीरे यह बात उन
चलाते। हुची, वह और घबराई, लोग

इस बात चीत के द किसी को न मिले। एक एक कर के
और एक क्या होगा, महीने हुये, दो बरस बीत गये, पर हर-
कौन जीम हिल लौटे। लोगों ने उन को मराही समझा,
लिये हैं—जो न कहीं जा सकते थे, और न कुछ कर सकते
। इसतिरी का दिन अपने एक लड़के और एक लड़की के
साथ बड़े दुख से बीतने लगा।

यह इसतिरी और हरमोहन कौन हैं? यह तो आपलोग

धीरे धीरे तीन बरस बीत गये, चौथे बरस इन लोगों ने एक ऐसी बात सुनी, जिस से इन लोगों का रहा सहा कलेजा और टूट गया। इन लोगों ने सुना इन का एक ही जमाई घरबार छोड़ कर किसी साधू के साथ कहीं चला गया, बहुत कुछ ढूंढा गया, पर कहीं कुछ खोज न मिली।

हरमोहन पांडे सीधे और सच्चे थे, अपने काम काजियों और टहलुओं पर भरोसा बहुत रखते थे। आंख में सील इतनी थी, जो आज कल नहीं देखी जाती। जिस ने आकर आंसू बहाकर कुछ मांगा, उसी ने कुछ पाया। विना कुछ लिखाये पढ़ाये सैकड़ों दे देते, जो कोई कुछ कहता, कहते जब उस को होगा देही जावेगा, बाम्हन का रुपया थोड़े ही

लेगा। जो यहीं तक होता, बहुत बिगाड़ न होता। हर-
बनाने ... में बड़ा भारी औगुन आलस था। आलसी होने के
ठीक किया, चलन कामों में टाल टूल बहुत करते, कामकाजियों
तोड़ने के लिये न जाने ... साम्हने रखा, उसी को सच माना, कभी
दूर होगा। इसतिरी कितना छोटे काम में इतना रुपया कैसे लगाया।
की बात में उस का जीवट काम तो होनहार की दुहाई दे कर,
अब तक भली भांत अच्छा भी ... बतला कर उस से पीछा
ठीक करने को उस ने ठीक तो किया, पर कब तक हो सकता है,
... का जी फिर चंचल हो गया, उस ने सोचा, ... थे ... ही दिनों में
... को अधूरा छोड़ना ठीक नहीं; जैसे हो छ दिन इस काम ... भर
... और करना होगा। तो क्या बासमती भी पहले की
में लाता। ... होगी? अब उस के जी में यह बात उठी। उस
सुहावनापन, ... ठीक किया, हां! बासमती भी साथ रहेगी, जो
अपना काम बहुत बनी है, उस से बिगाड़ क्यों किया जाय!

ऐसे लोगों के लिये भी बिपत है—बिपत किसी को नहीं छोड़ती—जब आती है भलेही आती है। बापुरे हर-मोहन का सब तो गयाही था, आज उस को अपने जमाई के लिये भी रोना पड़ा। जीना तो भारी होही रहा था, उस पर और रंग चढ़ गया। हरमोहन की इसतिरी रुपया पैसा गहने कपड़े को कुछ नहीं समझती थी, वह हरमोहन का मुंह देख कर सब भूल जाती। इसी से हरमोहन को बिपत में भी बहुत कुछ सहारा रहता था। पर आज जो चोट हरमोहन को लगी है वही चोट दूनी हो कर उस की इसतिरी को लगी। इस से वह जहां पड़ी है वहीं बिलख रही है, हर-मोहन की सुध कौन ले। हरमोहन बहुत घबराये। कब किस के जी में कैसा उलट फेर होता है, इस को कोई क्या जान सकता है। आज भी हरमोहन को भाग और होनहार से काम लेना चाहिये था, पर बन नहीं पड़ा, वह घबराये हुये घर के बाहर निकले, और सीधे एक ओर चल खड़े हुये। गांव के बाहर एक ने पूछा कहां जाते हो? कहा, कहीं जाता नहीं। गांव के पूरब ओर एक बन था, उसी को दिखला कर कहा, इसी बन तक जाता हूं। धीरे धीरे यह बात उन की इसतिरी के कानों तक पहुंची, वह और घबराई, लोग दौड़ाये, पर हरमोहन किसी को न मिले। एक एक कर के [illegible] क्या [illegible], महीने हुये, दो बरस बीत गये, पर हर-कौन जीभ हिल लौटे। लोगों ने उन को मराही समझा, लिये हैं—जो स[illegible] कहीं जा सकते थे, और न कुछ कर सकते थे। इसतिरी का दिन अपने एक लड़के और एक लड़की के साथ बड़े दुख से बीतने लगा।

यह इसतिरी और हरमोहन कौन हैं? यह तो आपलोग

तु समझही गये होंगे। पर जो न समझे हों तो मैं बतलाता हूं। इसतिरी पारबती है—लड़की देवहूती है—लड़का देवकिसोर है—और इन दोनों का बाप हरमोहन है।

हरमोहन को लोगों ने मरा समझा, हम क्या समझें ? जब खोज नहीं लगा, तो हम और क्या समझेंगे, गांववालों का साथ हम भी देते हैं।

## दसवीं पंखड़ी ।

चारों ओर आग बरस रही है—लू और लपट के मारे मुंह निकालना दूभर है—सूरज बीच आकास में खड़ा जलते अंगारे उगिल रहा है और चिलचिलाती धूप की चोटों से पेड़ तक का पित्ता पानी होता है। छरौं की भांत धूल के छोटे छोटे कन सब ओर छूट रहे हैं, धरती तत्ते तवे सी जल रही है—घर आवां हो रहे हैं और सब ओर एक ऐसा सन्नाटा छाया हुआ है—जिस से जान पड़ता है-जेठ की दोपहर जग के सब जीवों को जला कर उन के साथ आप भी धूधू जल रही है। बवंडर उठते हैं—हहा हहा करती पछवां बयार बड़े धूम से बह रही है।

देवहूती अपनी कोठरी में खाट पर लेटी है—लेटे ही लेटे न जाने क्या सोच रही है-कोठरी के किवाड़ लगे हैं--घर के दूसरे लोग अपनी अपनी ठौरों सोये हैं। आपलोगों ने अभी एक जेठ की दोपहर देखी है—ठीक वही गत देवहूती के जी की है। यहां भी लू लपट है, बवंडर है, खंडहर है, धूं है, चिलचिलाती धूप है, कलेजा को तत्ता तवा, घर रहने जो कहिये सब ठीक है। देवहूती के हाथ में एक प

उस चीठी को पढ़ती है। पढ़ते ही उस के कलेजे में आग बलने लगती है—वह घबराती है, और उस को समेट कर रख देना चाहती है। पर फिर भी चैन नहीं पड़ती—न जाने कैसा एक बवंडर सा भीतर ही भीतर उठने लगता है—इस लिये वह उस को, फिर खोलती है, फिर पढ़ती है, और फिर पहले ही की भांत अधीर होती है। कई बेर वह ऐसा कर चुकी है। अब की बेर उस ने फिर उस चीठी को निकाला और पढ़ने लगी। चीठी यह थी।

चीठी।

बातें अपनी तुम्हें सुनाते हैं।
कुछ किसी ढब से कहने आते हैं॥
जब से देखा है चांद सा मुखड़ा।
हम हुये तेरे ही दिखाते हैं॥
दिन कटा तो न रात कटती है।
हम घड़ी भर न चैन पाते हैं॥
भूल कर भी कहीं नहीं लगता।
अपने जी को जो हम लगाते हैं॥
जलना रहता है जल नहीं जाता।
यों किसी का भी जी जलाते हैं॥
बेबसी में पड़े तड़पते हैं।
हम कुछ [illegible] ही चोट खाते हैं॥
जी हमारा जला ही करता है।

[illegible]ता क्यों मेरे वह हमारा कौन ? [illegible] कितना ही [illegible], तो भी सोचना [illegible]हिये था, मैं क्या करता हूं, यों जी लगाते फिरना कैसा ? चाह जो ऐसा ही जी लगाना है, तो आंसू बहाना, घबराना, [illegible]ना, पड़ेहीगा, इस के लिये क्या मैं कर सकती हूं!

जी जलों को भी यों सताते हैं ॥
है उन्हीं का यहां भला होता।
जो भला और का मनाते हैं ॥
आप ही हैं बुरे वह बन जाते।
जो बुरा और को बनाते हैं ॥
हो तुम्हारा भला फलो फूलो।
अब चले हम यहां से जाते हैं ॥ (कामिनीमोहन) ॥

पढ़ते पढ़ते उस का जी भर आया, फिर वही गत हुई। वह सोचने लगी, कामिनीमोहन से मैं कभी बोली भी नहीं— कभी आंख उठा कर भली भांत उस की ओर देखा तक नहीं—न कभी कोई बात उस से कही—फिर वह इतना मुझ को क्यों चाहता है? जान पड़ता है मैं जो थोड़ा थोड़ा उस की ओर खिचनेलगी हूं—मेरा जी जो उस से बोलने के लिये ललचने लगा है—मैं जो उस को देखकर सुख पानेलगी हूं—यही बातें ऐसी हैं, जो उस की यह गत है, नहीं तो उस की यह दसा क्यों होती? कामिनीमोहन मेरे लिये जलता है, आंसू बहाता है, उस को न रात को नींद आती है न दिन को चैन पड़ती है, बेकली से तड़पता है, जी उस का उचट गया है, जीना भी भारी है,
से वह ... मैं उस से बोलती तक नहीं, दो चार मीठी बातों से भी
... र जी नहीं बहलाती— क्या इस से बढ़ कर भी कोई
देवहूती ... ? बोलने में क्या रक्खा है! जो मेरी दो बातों
न जाने क्या सो... भला होता है, तो इन दो बातों के कहने में क्या
दूसरे लोग अपनी ...

अभी एक जेठ की दोपहर देखी है—ठीक ... गत देवहूती के जी की है। यहां भी लू लपट है, बवंडर है, खंडहर है, ... है, चिलचिलाती धूप है, कलेजे को तत्ता तवा, घर रहनेजो कहिये सब ठीक है। देवहूती के हाथ में एक प...

सन्नाटा उस की कोठरी में पहले था, अब भी था, किसी
पांव की चाप भी कहीं सुनाई नहीं देती थी। उस ने भली
भांत आंख फैला कर चारों ओर देखा। साम्हने भीत पर
एक छिपकली दूसरी छिपकली का पीछा कर रही थी, कोने
में मकड़ी जाले में फंसी हुई एक मक्खी को लम्बी लम्बी
टांगों से खींच कर निगलना चाहती थी। एक तितली घर
भर में चक्कर लगा रही थी। बुढ़िया का सूत सर पर उड़
रहा था। और कहीं कुछ न था। वह कुछ सम्हली, और
फिर सोचने लगी। नहीं नहीं बुराई क्यों नहीं है! मा
कहती हैं भले घर की बहू बेटी का यह काम नहीं है, जो
पराये पुरुख से बोले, पराए पुरुख की ओर आंख उठा कर
देखना भी पाप है। फिर मैं क्यों ऐसा सोचती थी! क्या
मैं भले घर की बहू बेटी नहीं हूं। हां! मैं अभागिन हूं, मेरे
दिन पतले हैं, तीन बरस हुआ मेरे पती साधू हो गये। उन
की खोज भी नहीं मिलती। अब इस जनम में उन से भेंट
होने का भी भरोसा नहीं। जो भेंट भी हो तो किस काम
का। क्या वह फिर घरबारी होंगे? और यह बातें ऐसी
हैं, जिस से सब ओर मुझ को अंधेरा ही दिखलाता है। पर
क्या इस अंधेरे में उंजाला करने के लिये मुझ को अपनी मर-
जाद छोड़नी चाहिये। कामिनीमोहन मेरे लिये आंसू बहाता
है, तड़पता है, घबराता है, मरने पर उतारू है। पर क्यों मेरे
लिये उस की यह दसा है? मैं उस की कौन? वह हमारा
कौन? जो इस को जी की लगावट कहें, तो भी सोचना
[illegible]हिये था, मैं क्या करती हूं, यों जी लगाते फिरना कैसा?
[illegible]र जो ऐसा ही जी लगाना है, तो आंसू बहाना, घबराना,
[illegible]पना, पड़े हीगा, इस के लिये क्या मैं कर सकती हूं!

मझ ... दूसरा कर सकता है। रहा उस का रूप ! अब की बार देवहूती फिर घबराई, कामिनीमोहन की छवि उस की आंखों के सामने फिर गई। उस की बड़ी बड़ी आंखें, निराली चितवन, उस का हंसी भरा मुंह, चांद सा मुखड़ा, अनूठा ढंग, सहज अलबेलापन—सब एक एक कर के उस के जी में जागे। वह बहुत ही धीरे धीरे, अपने जी से भी छिपे २, कहने लगी, कामिनीमोहन तुम क्यों इतने सुंदर हो ? अब वह बहुत अनमनी हो गई, जी न होने पर भी कहने लगी, कामिनीमोहन क्या तुम सचमुच मेरे लिये मरने पर उतारू हो ? क्या सचमुच मेरे बिना तुम्हारा दिन कटता है तो रात नहीं और रात कटती है तो दिन नहीं ? क्या सचमुच मेरे लिये तड़पते हो, और आंसू बहाते हो, यह कैसी बातें हैं, मैं समझ नहीं सकती हूं। इन बातों के सोचते सोचते देवहूती के जी में बड़ा भारी उलट फेर हुआ। उस का सिर घूम गया और वह सन्नाटे में हो गई।

धीरे धीरे करताल बजने लगा, धीरे ही धीरे एक बहुत ही रसीला सुर चारों ओर फैल गया। इस घड़ी दुपहरी में यह सुर एक खुली खिड़की से देवहूती की कोठरी में घुसा। फिर धीरे धीरे उस के कानों तक पहुंचा। कानों के पथ से यह और आगे बढ़ा। और कलेजे में पहुंच कर ऐसा रंग लाया जिस में देवहूती सर से पांव तक रंग गई। यह सुर एक भिखारी ब्राम्हन के बहुत ही सुरीले गले से निकलता था। जो बड़ी सिधाई के साथ उस के घर के पास खड़ा यह लावनी गा रहा था।

लावनी–पति छोड़ नारि के लिये न और गती है।
नारी का देवता जग में एक पती है॥
जो पति की सेवा नेह साथ करती हैं।
जो पति गुन की ही ओर सदा ढरती हैं॥
पति के दुख में भी जो धीरज धरती हैं।
सपने में भी जो पती से न लरती हैं॥
उन के ऐसा धरती पर कौन जती है।
नारी का देवता जग में एक पती है॥
जिस का मन पती पराये पर नहिं आया।
पर पति की जिस ने छूई तक नहिं छाया॥
पति ही जिस की आंखों में रहे समाया।
पति बिना जगत जिस को सूना दिखलाया॥
वह भली नारियों की सिर धरी सती है।
नारी का देवता जग में एक पती है॥
जो लाल आंख पति को है कभी दिखाती।
जो छल कर के पति से है पाप कमाती॥
जो झूठमूठ पति से है बात बनाती।
जो कभी पराये पति को है पतियाती॥
उस की परतीत न यहां वहां रहती है।
नारी का देवता जग में एक पती है॥
परपति से अहल्या ने जो नेह बढ़ाया।
पत्थर हो कर सब अपना भरम गँवाया॥
सीता सावित्री ने जो पतिगुन गाया।
अब तक उन का जस सब जग में है छाया॥
पुजती पतिसेवा ही से पारवती है।
नारी का देवता जग में एक पती है॥ २॥

देवहूती जिस रंग में रंगी थी, वह बहुत पक्का था, अब यह रंग फीका पड़नेवाला न था। लावनी सुन कर उस का जी ही ठिकाने न हुआ। उस को अपनी आज की बातों पर एक ऐसी खिसियाहट और घबराहट हुई। जिस से अपने आप वह धरती में गड़ी जाती थी। कोठरी में कोई था ही नहीं पर मारे लाज के उस का सर ऊपर न उठता था। वह सोचने लगी मुझ को क्या हो गया था, जो आज मैं ऐसी बुरी बातों में उलझी रही। मा कहती हैं, जितने छन पराये पुरुख की बातों में बुरे ढंग से कोई इसतिरी बिताती है उस एक एक छन के लिये उस को भगवान के साम्हने समझौता करना पड़ता है। फिर क्यों मैंने ऐसा किया? इन सब बातों को सोच कर जी ही जी में वह बहुत डरी, चीठी को फाड़ कर दूर फेंका, और कोठरी के किवाड़ों को खोल जी बहलाने के लिये बाहर निकल आई। पर यहां भी वैसा ही सन्नाटा था, घर में कहीं कोई चाल न करता था। देवहूती फिर अपनी कोठरी में लौटी। और किवाड़ लगा कर सो रही।

## ग्यारहवीं पंखड़ी।

देवहूती और उस की मौसी के घर के ठीक पीछे भीतों से घिरी हुई एक छोटी सी फुलवारी है। भांत भांत के फूल के पौधे इस में लगे हुये हैं, चारों ओर बड़ी बड़ी क्यारियां हैं, एक एक क्यारी में एक एक फूल है—फुलवारी का समां बहुत ही निराला है। जो बेले पर अलबेलापन फिसला जाता है, तो चमेली की निराली छबि कलेजे में ठंढक लाती है। नेवारी ने ही आंखों की कोई नहीं निवारी है—जूही के लिये भी फुलवारी में तू ही तू की धूम है। कुन्द मुंह खोले

हंस रहा है, सेवती फूली नहीं समाती है। हरसिंगार की आनबान, केवड़े की ऐंठ, सूरजमुखी की टेक, केतकी का निराला जोबन, मोगरे की फबन, चंपे की चटक, मोतिये की अनूठी महक—सब एक से एक बढ़कर हैं। इन फूल के पेड़ों से दूर जहां क्यारियां निबटती हैं—फूलों के छोटे छोटे पौधे थे-इन के पीछे हरे भरे केले के पेड़ अकड़े खड़े थे, जिन के लम्बे लम्बे पत्ते बयार लगने से धीरे धीरे हिल रहे थे। इन सब के पीछे फुलवारी की भीत थी, और उस के नीचे एक बहुत ही लम्बी चौड़ी खाई थी, खाई में जल भरा हुआ था। कोई वो कौल खिले हुये थे।

इस फुलवारी के बीच में एक पक्का चौतरा है, इस पर पारवती वो देवहूती बैठी हुई हैं। भोर हो गया है सूरज की सुनहरी किरने चारों ओर छिटक रही हैं। एक भौंरा एक फूल पर गूंज रहा है। गूंजता गूंजता ठीक फूल की सीध में आता है ठिठकता है सिकुड़े हुये पांवों को फैला कर फूल की ओर झुकता है। फिर ठिठकता है। और पहले की भांति चक्कर लगा कर गूंजने लगता है। कितने छन यों ही गूंजता रहा, फिर पंख समेट कर उस पर बैठ गया। कुछ बेर चुपचाप उस का रस पीता रहा। फिर अधरुंधे गले से भन्नभन्न करने लगा। इस के पीछे गूंजता हुआ उस पर से उड़ गया। अब दूसरे फूल के पास गया, पहले इस के भी चारों ओर गूंजता रहा, फिर उसी भांत इस पर बैठा, रस लिया[illegible] है? भन्न बोला, फिर गूंजता हुआ इस पर [illegible] वह तिरछी पारबती वो देवहूती के देखते देखते [illegible] खिलखिला कर हंसना गया, पर इस का मन न भरा। धीरे [illegible]

आ कर गूंजता वो रस लेता रहा। पर जिस फूल पर से एक बार वह रस ले कर उड़ा उस के पास फिर न गया।

पारबती ने कहा, देवहूती इस भौंर को देखती हो, जो गत इस की है, ठीक वही कुचाली पुरखों की है। वह अपने रस के लिये इधर उधर चक्कर लगाते फिरते हैं। भोलीभाली इसतिरियों को झूठीमूठी बातें बना कर ठगते हैं। जब काम निकल जाता है फिर उस की ओर आंख उठा कर नहीं देखते।

मीठे सुर से हमी लोग नहीं रीझते। चिड़ियां ही इस को सुन कर नहीं मतवाली बनतीं। कीड़े मकोड़े ही पर इस का रंग नहीं जमता। यह पेड़ों तक को मोह लेता है। जो अच्छा बाजा मीठे सुर से बजता हो। और पास ही कोई फूल का पौधा रक्खा हो तो, देखोगी, उस की पत्तियां लगबगा उठीं। उस का हरा रंग और गहरा हो गया। फूल खिल गये और उस पर जोबन छा गया। इसी लिये भौंरा आते ही फूल पर नहीं बैठ जाता। कुछ घड़ी फूल के आस पास गूंजता है। यों अपनी मीठी गूंज से उस के रस को उभाड़ता है। और तब उस पर रस लेने के लिये बैठता है।

एक छोटा सा कीड़ा जो अपना काम निकालने के लिये इतना कुछ कर सकता है—रस पाने के लिये जो वह ऐसी दूर की चाल चल सकता है, तो अपना काम निकालने के बहुत हा[illegible] क्या नहीं कर सकता। जिस इसतिरी को वह जाता है, तो चाहै, उस का सामना होने पर वह कहता है। नेवारी ने ही आंखों क पुतली हो, मेरे प्रानों की प्यारी लिये भी फुलवारी में तू ही तू कलेजे में ठंढक होती है, जी में। तुम्हीं से मेरा जीना है। तुम्हीं

से मेरे अंधेरे जी में उंजाला है। जब तक आंखों के ... रहती हो समझता हूं सरग में बैठा हूं। आंखों से ओझल होतेही मुझ पर बिजली सी टूट पड़ती है। जब उस के पास चीठी भेजता है, लिखता है। तुमारे बिना मेरा कलेजा जल रहा है। अनजान में ही न जाने कैसी एक पीर सी हो रही है। खाना पीना कुछ नहीं अच्छा लगता। दिन रात का कटना पहाड़ हो गया है। चारों ओर सूना लगता है। जी को न जानें कैसी एक चोट सी लग गई है, हम सच कहते हैं जो तुम न मिलोगी हम कभी न जीयेंगे। तुमारे बिना हमारा है कौन। हम जानते हैं तुम्हीं को नाम जपते हैं, तुम्हारा ही जग में जहां देखते हैं, तुम्हीं को देखते हैं। खाते पीते उठते बैठते सुरत तुम्हारी ही रहती है। हम रहते हैं कहीं पर मन हमारा तुम्हारे ही पास रहता है। ...म की सिखाई पढ़ाई कुटनियां आती हैं, तो कहती हैं। वह तुम्हारा कलेजा न जाने कैसा है। पत्थर भी पसीजता है। पर कितना हूं कहो तुम नहीं मानती हो। वह तुम्हारे लिये मर रहे हैं, पड़े पड़े तड़पते हैं, आठ आठ आंसू रोते हैं, खाना पीना तक छूट गया है, पर तुमारे कान पर जूं तक नहीं रेंगती। भला इतना भी किसी को सताते हैं। जी की लगावट अपने हाथ नहीं जो किसी भांत तुम पर उस का जी आ गया, तो तुम को इतना कठोर न होना चाहिये। सब का सब दिन एक ही सा नहीं बीतता। क्या यह जोबन सदा ऐसा ही रहेगा। फिर थोड़े दिनों के लिये इतना क्यों इतराती हो। प्यासे को पानी पिलाया जाता है। भूखे ही को दो मूठ... है? जाता है। फिर न जाने क्यों तुम इन बातें वह तिरछी ... झती हो। इतना ही नहीं, गहने कपड़े लखिला कर हंसना

.।पञ्ज़ी ी जाती है। कभी कभी हाथ जोड़ने और नाक रगड़ने से भी काम लिया जाता है। तलवे की धूल तक सर पर रखलीजाती है। पर यह सब धोखे धड़ी की बाते हैं। छल वो कपट इन बातों में कूट कूट कर भरा रहता है। सचाई वो भलमनसाहत की इन में गंध तक नहीं होती।

जिस की हम भगवान के घर से हैं, जिस के लिये हम बनी हैं, जो हमारा जनम संघाती है। आंखों की पुतली हम हैं तो उसी की, प्रानों की प्यारी हैं तो उसी की, हमारे लिये तड़प सकता है। आंसू बहा सकता है। खाना पीना छोड़ सकता है। जी सकता है। मर सकता है तो वही। जो यह सब गुन उस में न हों तो भी जो कुछ है हमारा वही है। कहां तक वह हमारे काम न आवेगा। जो वह हम को छोड़ दे, जो ऐसा संजोग आ पड़े जिस से जनम भर फिर उस के मिलने की आस न हो तो भी उसी के नाम के सहारे हम को अपना दिन काट देना चाहिये। ऐसा होने पर यहां वहां हमारी और जैजैकार होगी। दूसरा हमारा कौन है? जिस की परछाहीं पड़ते ही हमारा जनम बिगड़ता है, लोगों को मुंह दिखाना कठिन होता है, उस से हम को किस भलाई की आस हो सकती है। गहने कपड़े रुपये पैसे देह और हाथ की मैल हैं! इन के पलटे क्या सतीपन ऐसा रतन मिट्टी में मिलाया जा सकता है!!! गहने कपड़े रुपये पैसे फिर मिल सकते हैं, पर जब इसतिरी का सतीपन एक बेर बिगड़ जाता [illegible] वह इस जनम में फिर कभी हाथ नहीं आता। ऐसी बहुत हो [illegible] कोई भले मानस इसतिरी, क्या कोई अच्छे घर जाता है, तो [illegible] चे कपड़े रुपये पैसे की लालच से अपना सती- है। नेवारी ने ही अ[illegible]

लिये भी फुलवारी में तू ही [illegible]

। तुम

के कड़े थे । पर झनकार किसी में न थी ।

यह सब कर के कामिनीमोहन ने उस में जी डाला, जी डालते ही इस मूरत के मुखड़े पर न जाने कैसी एक जोत दिपने लगी, न जाने कैसी एक छटा उस के ऊपर छलकने लगी। सहज लजीला मुखड़ा होने से उस की ललाई जो कुछ गहरी हो गई थी, वहुत ही अनूठी थी—भोलापन इन सबों से निराला था। भोर के तड़के चंपे की पंखड़ी को सूरज की सुनहली किरनों से चमकते देखा है—चांद की प्यारी किरनों से धीरे धीरे कोंई के फूल को खिलते देखा है—लजालू की हरी हरी पत्तियों को कुछ छू जाने पर लाज के बस में पड़ते देखा है—पर वह बात कहां ! वह अनूठापन कहां !!!

जी डाल कर कामिनीमोहन ने अपने आपे को खो दिया, वड़ी उलझन में पड़ा, उसे उस के सर की साड़ी को खसका कर कुछ नीचा करना पड़ा, ज्यों ज्यों वह सर की साड़ी नीची करने लगा, उस की उलझन वढ़ने लगी। वह सोचने लगा, जो देवहूती में लाज न होती तो क्या अच्छा होता। फिर सोचा, नहीं नहीं, लाज ही तो उस की चाह जी में और वढ़ा देती है ! लाज ही से तो वह और प्यारी लगती है !!! खुले मुंह की इसतिरियां कितनी देखी हैं—पर क्या घूंघटवाली के ऐसा उन का भी आदर है ? कपड़ों में लिपटी किवाड़ी की ओट में खड़ी इसतिरी जितना जी को चंचल करती है—क्या दुआरे पर आ कर अकड़ी खड़ी हुई इसतिरी के लिये भी जी उतना ही चंचल होता है ? सीधी चितवन कितनी ही देखी है—पर क्या वह तिरछी चितवन के इतना ही काट करती है ? खिलखिला कर हंसना

जी की कली खिलाता है—पर क्या होठों तक आ कर लौट गई हुई हंसी के इतना ही ? और क्या यह सब लाज के ही हथकंडे नहीं हैं। जो कुछ हो, पर क्या अच्छा होता देवहूती जो तुमारा मुखचंद एक बार मैं बिना बादलों के देखने पाता। इस घड़ी कामिनी मोहन की सब सुध खो गई थी, वह बावलों की भांत कहने लगा, क्या न देखने दोगी देवहूती ? मान जाओ, एक बार तो देखने दो। पर फिर अचानक वह चौंक उठा, उस ने सुना, जैसे कोई कहता है, आप क्यों अपने पावों में अपने आप कुल्हाड़ी मार रहे हैं! कामिनी-मोहन ने सुधि में आ कर देखा, साम्हने बासमती खड़ी है। उस को देख कर वह कुछ लजाया, पर छूटते ही पूछा, क्यों बासमती क्या मैं अपने आप अपने पांव में कुल्हाड़ी मार रहा हूं ?

बासमती। और नहीं तो क्या ? एक ऐसी वैसी छोकरी के लिये इतना आपे से बाहर होना, क्या अपने आप अपने पांव में कुल्हाड़ी मारना नहीं है ?

कामिनी मो०। क्या करूं बासमती जी नहीं मानता, जो देवहूती दो चार दिन के भीतर मुझ से न मिली तो मुझ को बावला हुआ ही समझो !

बासमती। क्यों ? देवहूती में कौन सी ऐसी बात है ? देवहूती से बढ़ कर कितनी ही आप के लिये मर रही हैं, कितनी ही आप पर निछावर हो चुकी हैं, फिर देवहूती में क्या रक्खा है, जो आप उस के लिये बावले होंगे ?

कामिनी मो०। इस को मेरे जी से पूछो बासमती ! मैं बातों से नहीं बतला सकता।

बासमती। यह आप की बहुत बड़ी कचाई है, घबराने

से कुछ नहीं होता, धीरे धीरे सभी बातें ठीक हो जाती हैं। आप की कचाई और घबराहट ही सब बातें बिगाड़ती है! आप जितना ही उस के लिये चंचल होते हैं, वह उतना ही ऐंठती है। मैं कहती थी आप उस के पास कोई चीठी न लिखिये, पर आप ने न माना, अब वह इतना तन गई है, जो पुहे पर हाथ तक नहीं रखने देती !!

कामिनी मो०। तुम सदा ऐसी ही बातें कहा करती हो, कुछ होता जाता तो है नहीं, उलटे सब बातों को मेरे ही सर मढ़ती हो। क्या मेरी चीठी भेजने से पहले उस के ये ढंग न थे?

बासमती। जी नहीं, ए ढंग नहीं थे। क्या देवकिसोर भी कभी फूल तोड़ते समै यहां आता था, पर जिस दिन से आप की चीठी गई है, उसी दिन से ज्यों फूल तोड़ने के लिये देवहूती फुलवारी में आती है, त्यों किसी ओर से देवकिसोर भी किसी बहाने आ धमकता है। और जब तक देवहूती फुलवारी से नहीं जाती—वह वहां से टलता तक नहीं।

कामिनी मो०। इस में भी तुम्हीं से कोई भूल हुई है—नहीं तो देवकिसोर इन बातों को क्या जानता है?

बासमती। मुझ से कोई भूल नहीं हुई है, मैं तुम्हारी चीठी को ऐसा चुपचाप देवहूती के पास रख आई—जो वह भी इस बात को न जान सकी। मैं ऐसा इस काम के लिये उस के घर में आई गई—जैसे छलावा—किसी ने देखा तक नहीं।

कामिनी मो०। यह तुम्हारी बातें हैं, पारवती की

डीठ कौन बचा सकता है। फूल तोड़ने के समै देवकिसोर का फुलवारी में आना उसी की चाल है।

बासमती कुछ खिसियानी सी हो कर अपने आप सोचने लगी, बात तो ठीक है, मैंने भी कुछ ऐसा ही सुना है, पर जी की बात जी ही में रख कर बोली—आप कहेंगे क्या, मैं पहले से ही जानती हूं। जितनी चूक है—सब मेरी चूक है। जहां कोई बात बिगड़ी, उस में मेरा ही दोस है। मैं आप की लौंड़ी हूं, जो आप ऐसी बातें कहते हैं तो मैं बुरा नहीं मानती, बात दिनों दिन बिगड़ रही है, दुख इसी का है। आप का काम हो जावे, मैं कनौड़ी बन कर ही रहूंगी।

कामिनी मो०। अब मैंने समझा, जान पड़ता है कल्ह जब तू मेरे कहने से उस के वहां गई, उस घड़ी वह तेरे हाथ न चढ़ी, इसी से आज इतना रंग पलटा हुआ है। नहीं तू तो सरग की अपसरा को धरती पर उतार लाने को कहती थी।

बासमती। अब भी मैं यही कहती हूं—क्या अब जो अड़चनें वढ़ गई हैं—इस से मैं हार मानूंगी। नहीं नहीं ऐसा आप मत सोचिये, बासमती ऐसी मिट्टी से नहीं बनी है, मैं अपना काम कर के ही दिखाऊंगी, पर इतना कहती हूं—काम अब इधर नहीं निकल सकता।

कामिनी मो०। आज तीसवां दिन है, फूल तोड़ते एक महीना हो गया, कल्ह से देवहूती मेरी फुलवारी में फूल तोड़ने न आवेगी। जो आज काम न निकला, तो फिर कब निकलेगा, जैसे हो बासमती आज काम पूरा करना चाहिये।

वासमती। आप फिर उतावली करते हैं, मेरी बात मान कर आप उतावले न हों, आज कल उस के रंग ढंग ठीक नहीं हैं। आज उस को अपने रंग में ढालना टेढ़ीखीर है।

कामिनी मो० वासमती तुम भूलती हो, जो आज कुछ न हुआ फिर कुछ न होगा। मैं तुम्हारी भांत जी का कच्चा नहीं हूं, जो कुछ मैंने सोच रक्खा है, आज उस को कर दिखाऊंगा। मैं तुम को इस घड़ी देख रहा था तुम कितनी हो, नहीं तो इन बातों से कुछ काम न था।

वासमती। राम करें, आप ने जो सोचा है, वह पूरा उतरे, मैं कच्ची हूं कि पक्की यह आप भली भांत जानते हैं—आज भी जानेंगे। मैं कितनी हूं यह भी आप ने बहुत दिनों से समझ रक्खा है—आज भी समझेंगे। पर आप का जी इस घड़ी कहां है, कुछ समझ में नहीं आता। आप उतावले हो कर ऐसी बातें कह रहे हैं, इसी से मुझ को डर है। उतावलापन अच्छा नहीं। पर जब आप नहीं मानते हैं, तो मैं अपना मुंह पीट डालूं तो क्या। मैं जाती हूं—आप जो कुछ कीजियेगा, बहुत चौकसी से कीजियेगा। आप चाहे इस घड़ी न मानें, पर मैं कहे जाती हूं। जहां तक हो सकेगा, मेरे जोग जो काम होगा, मैं उस में न चूकूंगी।

वासमती के चलते चलते कामिनीमोहन ने कहा, वासमती! कुछ कहना है—वासमती पास आई। फिर न जाने दोनों में क्या चुपचाप बातें हुईं—इस के पीछे दोनों वहां से चले गये।

———

# चौदहवीं पंखड़ी।

कामिनी मोहन की फुलवारी के चारों ओर जो पक्की भीत है—उस में से उत्तरवाली भीत में एक छोटी सी खिड़की है। यह खिड़की बाहर की ओर ठीक धरती से मिली हुई है—पर भीतर की ओर फुलवारी की धरती से कुछ ऊंचाई पर है—खिड़की से फुलवारी की धरती तक नीचे उतरने को बारह सीढ़ियां हैं। इस घड़ी इन्हीं सीढ़ियों से होकर बासमती वो देवहूती फुलवारी में उतर रही हैं। पर जिस झोंक से देवहूती का पांव उतरने के लिये उठ रहा है, बासमती का पांव वैसा नहीं उठता है। वह कुछ ठहर ठहर कर नीचे उतर रही है। देवहूती सीढ़ियों से जब फुलवारी में उतरी, बासमती चार सीढ़ी ऊपर थी, देवहूती फुलवारी में उतर कर दो डग आगे बढ़ी थी—वोंहीं उस का पांव नीचे की ओर धरती में धंसने लगा। देवहूती बहुत घबराई, उस ने बहुत चाहा, कुछ पकड़ कर ऊपर ही रहजावे, पर चाह पूरी न हुई—उस के औसान जाते रहे। देखते ही देखते देवहूती धरती में लोप हुई, जब उस का पांव नीचे की धरती से लगा, उस की आंखें खुलीं। आंखें खुलते ही उस ने देखा, जिस छींके में वह ऊपर से नीचे आई थी, और धरती पर पांव लगते ही जिस से खट से अलग हो गई थी, वह अब बड़े वेग से ऊपर को उठ रहा था। ज्यों ज्यों वह ऊपर उठ रहा था, ऊपर का वह बड़ा छेद जिस में हो कर देवहूती नीचे आई थी—मुंद रहा था। देखते ही देखते छेद मुंद गया, और

छीका उसी छेद के ऊपर छत में जा लगा—जो अब देखने में छत का बेल बूटा जान पड़ता था।

देवहूती इस घड़ी एक बहुत ही सजी हुई कोठरी में थी, सजने के लिये जो जो चाहिये, वह सब इस में था। इस कोठरी की भीतों की बनावट भी निराली थी, ऐसे ऐसे नग इस में लगे थे, जिस से सारा घर जगमगा रहा था। कोठरी के सामने एक छोटा सा आंगन था, आंगन के चारो ओर पहाड़ सी ऊंची ऊंची भीतें थीं। बाहर निकलने का कहीं कोई पथ न था। देवहूती ने यह सब देखा, और सोचने लगी, अब मैं क्या करूं। कामिनीमोहन की ही यह चाल है, यह बात उस के जी में भली भांत जच गई, पर अब छुटकारा कैसे हो—यही वह सोच रही थी। इतने में ऐसा जान पड़ा, जैसे सामने की भीत को पीछे से कोई ठोंक रहा है, एक एक करके तीनबार ऐसा हुआ, चौथी बार खटके के साथ भीत के भीतर छिपी हुई एक खिड़की खुल गई—और इसी पथ से कामिनीमोहन ने बड़े ठाट से कोठरी के भीतर पांव रक्खा। कामिनीमोहन के कोठरी में आते ही फिर भीत जैसी की तैसी हुई—अब कहीं खिड़की का चिन्ह न था।

पुरखों के बिचलाने के लिये उस खेलाड़ी ने इसतिरियों को बहुत से हथिआर दिये हैं, कौन हथियार कब काम में लाना चाहिये, इस को वह भली भांत जानती हैं। देवहूती भी इसतिरी है, वह इस बात को नहीं जानती थी, यह नहीं कहा जा सकता। हां! इतना हो सकता है, सब इसतिरियां अपने हथियारों को एक ही ढंग से काम में नहीं ला सकतीं, जैसे भाला बरछी चलाने में कोई बहुत

ही चौकस होता है—कोई कुछ उस से घट कर—कोई उस से भी घट कर। उसी भांत अपना हथियार चलाने में इसतिरियों की गत है—देवहूती किस ढंग की थी हम नहीं बतला सकते—पर जिस घड़ी देवहूती और कामिनीमोहन की चार आंखें हुईं—देवहूती ने अपनी आंखों से बहुत सा बिख उस के ऊपर उगल दिया। इस घड़ी उस के सर का कपड़ा मांग से भी कुछ पीछे था, बिखरे हुये बाल दोनों गालों पर बड़े अनूठेपन के साथ हिलते थे, होंठ अनोखे ढंग से खुले थे, जिस के भीतर मीठी मुसकिराहट झलक रही थी। भौंहें कुछ टेढ़ी थीं, आंखों में लाल डोरे पड़ रहे थे, और मुखड़े का ढंग बहुत ही निराला था। वह झुकी हुई अपने बालों में उलझी कान की बालियों को सुलझा रही थी, बीच बीच में उस के हाथों की चूड़ियां बहुतही मीठेपन से बजती थीं। यह सब देख सुन कर कामिनीमोहन का अपने आपे में न रहना कोई बड़ी बात नहीं है—सचमुच इस घड़ी वह अपने आपे में नहीं था—और सब भांत देवहूती के हाथों का खेलौना हो गया था। कुछ घड़ी हका बका बना वह उस को देखता रहा, पीछे जी सम्हाल कर बोला, देवहूती तुम जितनी सुंदर हो उतनी ही कठोर हो।

देवहूती। कठोर पुरुख लोग होते हैं, उन्हीं का कलेजा पत्थर का होता है, हम इसतिरियां कठोर होना क्या जानें।

कामिनी मो०। हम महीनों से तुम्हारे लिये मर रहे हैं, आंसू बहा रहे हैं, पर तुम ने कभी हमारी ओर आंख उठा कर देखा तक नहीं, उलटे कहती हो, पुरुखों का ही कलेजा पत्थर का होता है!

देवहूती । तुम हमारे जी की क्या जानते हो ! जो तुम मेरे लिये मर रहे हो—तो मैं तुम्हारे लिये मर चुकी हूं—जीती क्यों कर हूं यह नहीं समझ में आता । तुम मेरे लिये आंसू बहा रहे हो, तो तुमारे लिये मेरा कलेजा जल कर राख हो गया है, उस में एक बूंद लहू नहीं जो आंसू निकले । हां यह सच है, मैं ने तुम्हारी ओर कभी आंख उठा कर नहीं देखा, पर तुम ने कभी भले घर की बहू बेटी को किसी को किसी के सामने आंख उठा कर देखते देखा है ? मैं कब अकेली रही जो तुम्हारी ओर आंख उठा कर देखती । बासमती के साम्हने मुझ से ऐसा काम नहीं हो सकता ।

कामिनी मो० । क्या बासमती कोई और है ?

देवहूती । और क्यों नहीं है ! जो बात हमारे तुम्हारे बीच की है, उस को तुम जानो, मैं जानूं—तीसरे को जनाना मैं नहीं चाहती । इसी लिये मैं ने तुम्हारी चीठी के पलटे में कोई चीठी भी नहीं भेजी—किस के हाथ भेजती । पर मेरा सब किया कराया आज मिट्टी हुआ, आज बासमती ने सब जाना, मेरा यही उलाहना है—और कुछ नहीं ।

कामिनी मो० । यह चूक तो हुई । पर तुम्हारे फांसने के लिये ही मैं ने ऐसा किया, तुम्हारे जी की बात मैं नहीं जानता था, नहीं तो कभी ऐसा न करता ।

देवहूती । तुम्हारा रूप, तुम्हारी मतवाली करने वाली आंखें, तुम्हारी जी उलझाने वाली लटें, तुम्हारी रस भरी मुसकिराहट, जिस को न फांसेगी—तुम्हारी यह चाल उस को नहीं फांस सकती । इस निराली कोठरी में भी तुम उस का कुछ नहीं कर सकते । पर मैं तो योंही

तुम्हारे ऊपर मर रही हूं-चाहे यों फांसो चाहे वों—

कामिनी मो०। यह कौन जानता था, आज जो कुछ मैंने किया उस में बासमती ही आंखों की किरकिरी है, नहीं तो क्या तुमारे जी की बात मैं किसी भांत जान सकता था।

देवहूती। तुम यह क्या कहते हो, जिस दिन मेरी आंख तुम्हारे ऊपर पड़ी, उसी दिन तुम को समझ लेना चाहिये था, मैं तुम्हारी हो चुकी। वह कौन इसतिरी है जो तुम को देख कर तुम्हारे ऊपर निछावर न होगी।

कामिनी मो०। यह बात दूसरी इसतिरी कहे तो कहे, पर तुम मत कहो देवहूती! मैं आप तुम पर निछावर हूं, मैं ही नहीं, मेरा धन, मान, सब तुम पर निछावर है, मेरे घर की लच्छमी तुम्ही हो, मैं तुम्हारे लिये सब छोड़ सकता हूं—पर तुम को नहीं छोड़ सकता। जिस दिन तुम आंख भर कर मुझ को देखोगी, जिस दिन अपनी फूल ऐसी बांहों को फैला कर मुझ से मिलोगी, उस दिन मैं अपना बड़ा भाग समझूंगा।

देवहूती। मुझ को धन संपत से कुछ काम नहीं, मैं तुम्हारे रूप गुन की भिखारिनी हूं-वही मुझ को चाहिये। तुम्हारे संग उजाड़ में भी रहना हो तो वही सरग है। मुझ को अब किस का आसरा है, जो मैं हाथ लगे सोने से भी मुंह मोड़ूंगी। पर बात इतनी है-मैं आज कल देवी की पूजा कर रही हूं-कलह पूजा पूरी होगी-फिर मैं आप से बाहर नहीं। देवी देवते की बात में सदा डरना चाहिये, पीछे कुछ हुआ तो जनम भर पछतावा रहेगा। मेरे दिन खोटे हैं, इस से मैं फूंक फूंक कर पांव रखती हूं। थोड़ा सा

आज बासमती का भी खटका लगा है—दूसरे दिन यह खटका भी न रहेगा। जितनी घड़ियां यहां बीत रही हैं, मैं लाजों मर रही हूं, न जाने बासमती क्या सोचती होगी?

कामिनी मो०। मैं तुम्हारा दास हूं—जो तुम कहती हो मैं उस से बाहर नहीं हो सकता। मैं तुम को अभी फुलवारी में पहुंचाऊंगा—पर फिर मैं कैसे तुम से मिलूंगा—यह बात मेरी समझ में नहीं आती।

देवहूती। मैं जिस घर में रहती हूं—उस में दक्खिन ओर एक बड़ा कोठा है, कोठे में दो खिड़कियां हैं, एक बड़ी और एक छोटी। बड़ी पर मैं बहुत बैठा करती हूं—तुम भी उस ओर बहुत आते जाते हो, परसों मैं तुम को जाते देख कर उस पर से एक चीठी गिराऊंगी, उस चीठी में जो लिखा हो, वही करना, क्या जाने मेरे दिन फिर पलटें।

कामिनी मो०। अच्छा देवहूती जाओ, मुझ में इतनी सकत नहीं, जो मैं तुम्हारी बात न मानूं—पर इस दास को न भूलना।

इतना कहकर कामिनीमोहन ने देवहूती को पीछे वाली भीत को पहले ही की भांत तीन बार ठोंका, चौथी बार ठोंकने पर इस भीत में भी एक खिड़की दिखलाई पड़ी, देवहूती चट उसी में से होकर बाहर हुई, भीत फिर जैसी की तैसी हुई। जाते जाते देवहूती कह गई, मैं सब भूल सकती हूं—पर तुम को भूल नहीं सकती।

## पंद्रहवीं पंखड़ी।

बड़ी गाढ़ी अँधियाली छाई है, ज्यों ज्यों आकास में बादलों का जमघटा बढ़ता है, अँधियाली और गाढ़ी होती है। गाढ़ापन बढ़ते बढ़ते ठीक काजल के रंग का हुआ, गाढ़ी अँधियाली और गहरी हुई, इस पर अमावस, आधी रात, और सावन का महीना। पहरों से झड़ी लगी है, बड़े धूम से बरखा हो रही है, बादल जी खोल कर पानी उगल रहे हैं। कभी कभी कौंध होती है—पर बहुत थोड़ी—बिजली झलक भर जाती है। मुंह निकालना उस को भी दूभर है। गरज बादलों के भीतर ही घूम रही है, पानी पड़ने की घोर चिंघाड़ सुन कर नीचे आते उस का कलेजा भी दहलता है। बूंदें धड़ाके के साथ गिर रही हैं, ओलती से मुट्टियों मोटी धार पड़ रही है, और चारों ओर पानी बहने की हर हर हर हर बहुत ही डरावनी धुन फैली हुई है। यह सब बहुत ही छिपे छिपे घोर अँधियाली की गोद में होता है, आंखें फाड़ फाड़ कर देखने पर भी कहीं बूंद और पानी की झलक तक नहीं दिखलाती। हां, बूंदों के गिरने, पानी के धूम से पड़ने और बहने, की मिली हुई कठोर धुन, इस अँधियाली के कलेजे को भी भेद कर कानों तक पहुँचती है, और रात के गहरे सन्नाटे को भी तोड़ रही है, पर घोर अँधियाली ने इस को भी अपने रंग में रंग कर बहुतही डरावनी बना रक्खा है।

इसी बेले एक गली में घुटनों पानी हलते हुये तीन जन घुस रहे हैं, यह तीनों बीच गली में जा कर ठहरे,

गली की पच्छिम ओर एक ऊंचा कोठा है, उस की एक बड़ी खिड़की खुली हुई है, ऐसी घोर अँधियाली में भी इस खिड़की के भीतर उंजाला है, खिड़की से गली की धरती तक एक रस्सी की सीढ़ी लगी हुई है, इन तीनों में से एक ने बहुत टटोल कर इस रस्सी की सीढ़ी को पाया, और बहुत फुर्ती से उस के सहारे खिड़की तक पहुंच कर वह कोठे के भीत्तर पैठ गया। वहां उस ने कोठे को सूना पाया, केवल एक चौदह पंद्रह बरस की बहुत ही सुघर लड़की एक पलंग पर अलबेलेपन के साथ अचेत सो रही थी। एक चटाई पलंग के पास ही धरती पर बिछी हुई थी। एक मिट्टी का दीया टिमटिमाता हुआ जल रहा था, और कहीं कोई न था। कोठे पर चढ़नेवाला बहुत ही चुपचाप पहले कोठे की सीढ़ी के पास गया, वहां जो दुआरा था उस को उस ने बाहर की ओर से लगा पाया। धीरे धीरे बिलाई के कांटों को पकड़ कर किवाड़ों को आगे की ओर खींचा, पर वह न खुलीं, जी को पूरी ढाढ़स हुई, उस ने भीतर से भी बिलाई लगा दी। इस दुआर के दक्खिन ओर एक बड़ी खिड़की थी, वह अब इस के पास आया, धीरे धीरे इस के किवाड़ों को भी देखा, यह भी बाहर से लगे हुये थे, इस के कील कांटों को भी भली भांत देख कर पीछे इस की बिलाई भी उस ने भीतर से लगादी। यह सब करके वह निचिन्त हुआ—एक ऊंची सांस भीतर से निकल कर बाहर आई—कलेजा धक धक करने लगा—पर वह जी को थाम कर धीरे धीरे पलंग की ओर बढ़ा। पलंग के पास पहुंचा ही था, इतने में जिस खिड़की से वह आया था, उसी खिड़की से उस ने एक दूसरे जन को कोठे के

भीतर पैठते देखा, कोठे के दीये की जोत ठीक इस पैठने वाले के मुंह पर पड़ती थी, उसी धुंधली जोत में उस ने देखा, पैठने वाला उन्नीस बीस बरस का लांबा गठीला जवान है। हाथ पांव बहुत ही कड़े हैं, सारे अंग खुले हुये हैं, केवल एक कसा हुआ लंगोटा देह पर है। सर के कटे हुये छोटे छोटे बालों से पानी की अनगिनत बूंदे टपक रही हैं, मुंह उस का बहुत गंभीर है—जिस पर बेडरी और भलमनसाहत एक साथ झलक रही हैं।

इस पिछले जन को इस भांत अचानक आया हुआ देख कर उस पहले जन के पेट में खलबली पड़ गई, औसान जाते रहे, और कलेजा बल्लियों उछलने लगा। जिस घड़ी उस पहले जन की आंख इस पिछले जन पर पड़ी थी, उसी घड़ी उस ने ठीक कर लिया था, यह मेरे साथ वाले दो जनों में से कोई एक नहीं है, यह इस गांव का लोग भी नहीं जान पड़ता, क्योंकि इस गांव का ऐसा कौन है जिस को मैं नहीं जानता, पर इस को तो आज तक मैंने कभीं नहीं देखा। इस लिये फिर यह है कौन? उस ने उसी घड़ी उसी हड़बड़ी में सोचा, यह हो न हो कोई चोर है! और जो चोर नहीं है तो देवहूती का छैल है! जो इसी भांत छिप कर नित्त इस के पास आता है। यह दोनों बातें ऐसी थीं, जिन के जी में समाते ही वह जल भुन गया, उस के ऊपर उस को कुछ रोस भी हुआ, जिस से घबराहट दूर हुई, और जी कुछ कड़ा हुआ, इस लिये उस ने कोठे में उस के पांव रखते ही उस से कुछ अक्खड़पन के साथ पूछा, क्यों रे तू कौन है?

पिछला जन। मैं तेरा जम हूं।

पहला जन। हाँ, तू मेरा जम है। देख मुंह सम्हाल कर बातें कर, छोटा मुंह बड़ी बात अच्छी नहीं होती।

पिछला जन। मैं ही तो इस अँधियाली रात में छिप कर दूसरे के घर में घुस आया हूं—मैं ही तो एक पराई इसतिरी का सत इस भांत कपट कर के बिगाड़ना चाहता हूं—इसी से मुझ को बड़ा डर है।

पहला जन। मैं तो दूसरे के घर में छिप कर पराई इसतिरी का सत बिगाड़ने आया हूं! पर यह तो बतला तू यहां क्या आया है? क्या तू चोर नहीं है?

पिछला जन। मैं चोर हूं या साह तुझे आप जान पड़ेगा, कुछ घड़ी में तू यह भी जानेगा, मैं किस लिये यहां आया हूं।

पहला जन। मैं कुछ घड़ी में क्या जानूंगा, अभी जानता हूं तू मरने के लिये यहां आया है। चींटी को पंख निकलता है, तो अपने आप वह आग पर जाकर जल मरती है।

पिछला जन। ठीक बात है! मैं मरने के लिये ही यहां आया हूं, पर यह जान ले तुझे मार कर मरूंगा, बिना तुझे मारे मैं कभी न मरूंगा।

पहला जन। तू किस बूते इतनी है कड़ी बघारता है, तू नहीं जानता मैं कौन हूं?

पिछला जन। मैं जानता हूं— तू देस का नीच, कुचाली, और नटखट है।

पहला जन। चुप रह! जो गाली बकेगा तो जीभ पकड़ कर खैंच लूंगा।

पिछला जन। आ देखूं तो कैसे तू मेरी जीभ खैंचता

है, एक ही झापड़ में तो अंधा होकर धरती पर गिर पड़ेगा ।

पहला जन । मुन्ना ! मुन्ना !! ओ मुन्ना !!! बघेल ! बघेल !! ओ बघेल !!! अबकी बार चिल्ला कर कहा, ओ मुन्ना और बघेल अभी कांठे पर चढ़ आओ ।

पिछला जन । मुन्ना और बघेल के भरोसे ही यह सीटी पटाक थी, तो तेरी देखी गई । पापी नीच जा अब तू भी वहीं जा जहां मुन्ना और बघेल गये हैं ।

इतना कह कर कड़क कर पिछला जन पहले जन की ओर झपटा, धन जन और जवानी के मद से मतवाले पहले जन से भी यह न सही गई, वह भी छुरी निकाल कर इस की ओर दौड़ा, पर पिछले जन ने बहुत ही फुर्ती से उस के हाथ में से छुरी छीन ली, और गला पकड़कर एक ही झटके में उस को पछाड़ कर उस के ऊपर चढ़ बैठा ।

इस झपटा झपटी और कड़का कड़की में उस पलंग पर सोई हुई लड़की की नींद टूट गई—वह घबरा कर पलंग पर उठ बैठी, आंख मलते मलते कहा, भगमानी! भगमानी !! यह कैसी धमा चौकड़ी है !!! उस की बोली उस सुन सान कोठे में गूंज उठी, पर किसी दूसरे की बोल न सुनाई पड़ी। उस ने हड़बड़ी में आंखें खोल दीं, पास की चटाई पर किसी को न पाया, पर उस से थोड़े ही दूर पर उस ने कामिनीमोहन को धरती पर गिरा, और उस के ऊपर एक अनजान को बैठे देखा । इस अनसोची और अनहोनी बात को अचानक देख कर वह कांप उठी—उस की घिग्घी बंध गई—और वह चक्कर में आ गई । अभी वह सम्हली नहीं थी, इतनेही में उस पिछले जन ने जिस को

अब हम देवस्वरूप नाम से पुकारेंगे, कहा—क्यों रे! राच्छसी!! भले घर की बहू बेटी का क्या यही काम है?

लड़की ने कहा, आप क्या कहते हैं, मैं समझ नहीं सकती हूं। पर जिस भले घर की बहू बेटी के ऐसे निराले कोठे में, ऐसी अंधियाली रात में, इस भांत दो अनजान पुरुष धमाचौकड़ी करते-हों, वह भले घर की बहू बेटी काहे को है! आप मुझ को भले घर की बहू बेटी न कहिये। मुझ को अब इस धरती पर रहना भी भारी है—अब मैं यही चाहती हूं—धरती माता फट जावें और मैं उस में समा जाऊं।

देवस्वरूप ने कहा तुम मत दुखी हो, मैंने तुम्हारा जी देखने के लिये ही वह बात कही थी, अब मुझ को तुम से कुछ नहीं कहना है। मैं कामिनीमोहन से दो चार बातें करना चाहता हूं। यह कह कर वह कामिनीमोहन की ओर फिरा, उस को कड़ी आंखों से देख कर बोला, देखो कामिनीमोहन! मैं तुम्हारे ऊपर चढ़ कर बैठा हूं, तुम्हारी छुरी यह मेरे हाथ में है, मैं इस को तुम्हारे कलेजे में घुसेड़ दूं—या तुम्हारे गले में चुभा दूं, तो तुम अभी तड़प कर मर जाओगे, इस घड़ी तुम्हारा मरना जीना मेरे हाथ में है। पर सच बात यह है मैं तुम को जी से मारने के लिये यहां नहीं आया हूं—मैं इस लड़की का धरम बचाने के लिये यहां आया था, राम की दया से वह बात पूरी हुई—मैं तुम्हारा जी ले कर क्या करूंगा। मैं तुम को अब छोड़ दे सकता हूं—पर यों न छोड़ूंगा। तुम दो बातों के लिये मुझ से सपथ करो, तभी छोड़ूंगा, क्या सपथ करोगे?

कामिनीमोहन ने बहुत धीरे से कहा, आप क्या कहते हैं!

देवसरूप ने कहा, मैं यही कहता हूं-एक तो आज से किसी पराई इसतिरी को तुम छल कपट कर के मत फांसो, और न किसी भांत उस का सत बिगाड़ो-दूसरे आज की जितनी बातें हैं, उन को अपने तक रखना, भूल कर भी किसी से न कहना।

कामिनीमोहन ने एक लम्बी सांस ली-बिख की सी घूंट घोंट कर देवसरूप की कही हुई बातों के लिये भगवान को बीच देकर सपथ किया, और एक आह भर कर कहा, आप अब मुझ को छोड़ दीजिये, मेरा जी निकल रहा है।

अच्छा जा छोड़ दिया, पर मेरी बात को भूलना मत, बुरा मान कर तुम मेरा कुछ नहीं कर सकते, मैं ऐसा वैसा मानुख नहीं हूं---धरम की रच्छा के लिये जो लोग कभी कभी मानुख के रूप में दिखलाई पड़ते हैं-मैं वही हूं। तुम सचेत हो जाओ, धरम के पथ पर चलोगे, तो आगे को तुम्हारे लिये बहुत अच्छा होगा। यह कह कर देवसरूप ने कहा, अच्छा कामिनीमोहन अब तू इस कोठे से उतर, मैं भी तेरे साथ नीचे चलता हूं।

इतनी बात चीत होने पीछे बारी बारी दोनों उसी रस्सी की सीढ़ी से नीचे उतरे-नीचे उतर कर देवसरूप ने उस रस्सी की सीढ़ी को खिड़की से खींच कर टुकड़े टुकड़े कर डाला। देवहूती चुप चाप यह सब लीला देखती रही, पर कोई बात उस की समझ में नहीं आई। वह खिड़की के किवाड़ लगा कर फिर अपनी पलंग पर सो गई। पर उस का जी रह रह कर बहुत घबराता था।

अब भी बरखा का वही ढंग था, अंधियाली भी वैसी ही गहरी थी, इसी अंधियाली और बरखा में देवसरू

कामिनीमोहन की आंखों के ओझल हुआ। कामिनीमोहन ने अपने दोनों साथियों को इधर उधर बहुत खोजा, पर उन को कहीं न पाया, चुप चाप मन मारे वह घर आया, आज उस की रात बहुत ही बेचैनी से कटी।

—०—

## सोलहवीं पंखड़ी।

"देखो! चाल की बात अच्छी नहीं होती"

अपनी फुलवारी में टहलते हुये कामिनीमोहन ने पास खड़ी हुई बासमती से कहा—

बासमती। क्या मैं ने कोई आप के साथ चाल की बात की है? आप के होठों पर आज वह हंसी नहीं है, आंखें डबडबाई हुई हैं, मुंह बहुत ही उतरा हुआ है—यही सब देख कर मैं ने जो पूछा आप का जी कैसा है! तो यह मेरी चाल की बात है!

कामिनी मो०। चाल की बात न है और क्या है! तुम क्या नहीं जानती हो—फिर सब बातें जान बूझ कर पूछने का ढचर निकालना, चाल की बात नहीं है, तो क्या है?

बासमती। मैं क्या जानती हूं? जितनी बातें मैं जानती हूं उन में एक बात भी ऐसी नहीं है, जिस से आप इतने उदास हों, मैं आप को हंसता खेलता देखने आई थी, पर उलटे मुरझाया हुआ पाती हूं—अब मैं क्या जानती हूं बीच में क्या गड़बड़ हुआ।

कामिनी मो०। चुप रहो बासमती! क्यों बहुत बातें बनाती हो। तुम सब जानती हो और सब तुम्हारा ही बिगाड़ा बिगड़ता है। मुझ से काम बनाने के बहाने अलग ऐंठती हो, और वहां देवहूती की मा को सब भेद बतला कर अलग कमाती

हो, अब मैंने तुम्हारा मरम समझा है। पहले मैं तुम को ऐसा नहीं समझता था।

बासमती। राम! राम!! यह आप क्या कहते हैं, जो मैं आप से छल कपट करती होऊं, तो मेरी आंख फूट जावे, मेरे ढोल पड़ें, मेरा एक पूत मेरे काम न आवे। मेरा कोई गला काट डाले, तो भी मैं आप की बात दूसरे को नहीं बतला सकती, रुपया पैसा क्या है जो उस की लालच से मैं ऐसा करूंगी।

कामिनी मो०। जो ऐसा नहीं है, तो फिर ऐसी घोर अंधियाली में, ऐसी कठोर बरखा में, खड़ी आधी रात को एक अनजान पुरुख मेरा काम बिगाडने के लिये वहां कैसे पहुंच गया।

बासमती। इस को राम जाने—मैं कुछ नहीं जानती, मैं जो झूठ कहूं तो मेरी जीभ गल जावे। मैं आप की लौंडी हूं काम लगने पर आप के लिये अपना कलेजा निकाल कर साम्हने रख सकती हूं—आप इस भांत मुझ को दोस न लगाया करें।

कामिनी मो०। क्या कहूं बासमती! रात की बात कुछ समझ में नहीं आती, सौठौर जी जाता है, तुम्हारा मन बूझने के लिये ही मैंने यह बातें कहीं, नहीं तो मैं जानता हूं तुम ऐसी नहीं हो, मेरी इन बातों का तुम बुरा न मानना।

बासमती। आप ने क्या कहा जो मैं बुरा मानूंगी, जिस पर बस चलता है, जो अपना होता है, उसी पर झांझ निकाली जाती है। आप बिगड़ेंगे तो हम्हीं लोगों पर बिगड़ेंगे और किस पर बिगड़ेंगे?

बासमती की बातों से कामिनीमोहन का दुख कुछ हलका हुआ, उस ने अपने जी का बोझ और हलका करने

के लिये धीरे धीरे रात की सब बातें बासमती से कहीं, पीछे एक लम्बी सांस भर कर कहा, बड़ा पछतावा यह है बासमती ! मैं रात देवहूती से दो बातें भी न कर सका ।

बासमती । मैं आप के जी की बात समझती हूं ! आप दो नहीं दस बातें करते तो क्या—अब उस बूंद से भेंट नहीं हो सकती ।

कामिनी मो० । मैं देखता तो वह क्या कहती है !

बासमती । यह आप अपनी खिसियाहट मिटाते हैं, जब वह अपनी चिकनी चुपड़ी बातों में आप को फांस कर निकल गई, तभी आप को समझना चाहिये था । वह नित फुलवारी के फाटक में हो कर आती जाती थी, जब उस दिन फाटक छुड़ा कर मैं उस को खिड़की की ओर ले चली, तो वह एक डग आगे न रखती थी, पर मेरे ऐसा था जो मैं किसी भांत उस को उस ओर लिवा गई ।

कामिनी मो० । मैं उस को इतना नहीं समझता था, उस के भोले भाले मुखड़े से इतना सयानपन नहीं झलकता ।

बासमती । वह देखने ही को भोली भाली है, उस की मां ने उस को पूरी पक्की बना दिया है—देखते नहीं उस का कलेजा ! ... ीने आप नित्त उस के कोठे की ओर एक एक नहीं चार चार बार जाते रहे, पर क्या उस की झलक तक दिखलाई पड़ी !

कामिनी मो. । नहीं, कभी नहीं, झलक का देख पड़ना तो दूर ! वह खिड़की भी मुझ को कभी खुली नहीं मिली । इसी से तो बहुत समझ बूझ कर रात की बात ठीक की गई थी, पर क्या कहूं हम लोगों की यह चाल भी पूरी न पड़ी ।

बासमती। चाल तो सभी पूरी पड़ी थी, पर अनसोची बात के लिये क्या किया जावे—मैं यह नहीं समझती हूं यह दाल भात में मूसल कौन था ?

कामिनी मो.। जो यह बात मैं जानता ही, तो फिर क्या था, आज ही उस को ठिकाने लगाता ! वह तो अपने को देवता बतलाता था, पर वह जैसा देवता है मैं जानता हूं! वह है कैंड का ! यह मैं कहूंगा, पर अपने को देवता बतलाना उस की निरी चाल थी।

बासमती। आप ने आज उस को खोजवाया था ?

कामिनी मो.। खोजवा कर क्या करूंगा ऐसी बातों पर धूल डालना ही अच्छा है, फिर मुझ से बैर कर के कोई इस गांव में ठहर सकता है। वह कभी सटक गया होगा, यहां बैठा थोड़ ही होगा।

बासमती। मुन्ना और बघेल तो आप के निज के लोग हैं, आप इन को क्यों नहीं उस के पीछे लगाते। इन दोनों के बीच की बात क्यों कर फूटगी।

कामिनी मो.। मुन्ना और बघेल का भी रात ही से खोज नहीं मिलता, क्या कहूं रात की जितनी बातें हैं सभी निराली हैं।

बासमती। क्यों यह लोग क्या हुये ?

कामिनीमो.। मैं ने पैंतालीस सौ रुपये का गहना देवहूती के लिये बनवाया था, इन गहनों को मैं इस लिये साथ लेता गया था, जो देवहूती न मानेगी, तो इन्हीं का लालच देकर उस को मनाऊंगा। जब मैं कोठे पर चढ़ने लगा, गहनों का डब्बा बघेल को दे दिया, कोठे पर पहुंच कर मैं ऐसा उतावला हुआ जो यह बात भूल गई। इसी बीच वह

दोनों उस डब्बे को लेकर चंपत हुये। इतने रुपये का धन हाथ आया था, यह लोग क्यों कर छोड़ते।

बासमती। जो सौ रुपये भगमानी को और पचास साठ रुपये देवहूती के घर के दूसरे काम काजियों को दिये गये थे, मैं इसी के लिये मर रही थी, यह बात तो आपने ऐसी सुनाई, जो मुझ पर बिजली टूट पड़ी।

कामिनीमो.। भगमानी को जो सौ रुपये दिये गये उस का क्या पछतावा है, उस ने अपना सब काम ठीक ठीक किया था, घर के भीतर की ओर से किवाड़ियां लगा ली थीं, कोठे की बड़ी खिड़की खोल कर उस पर रस्सी की सीढ़ी लगा दी थी, आप भी कोठा छोड़ कर कहीं चली गई थीं। काम पड़ने पर उस के घर के दूसरे काम काजी भी सर न उठाते—पर इन दोनों ने बड़ा धोखा दिया।

बासमती। धोखा नहीं दिया, सर काट लेने का काम किया, पर मैं क्या कहूं, मुझ से तो आज कुछ कहते ही नहीं बनता।

कामिनी मो.। जाने दो बासमती! मुझ को इन बातों का इतना खोज नहीं है, पर देवहूती को हाथ से न जाने देना चाहिये।

बासमती। मैं कब देवहूती को छोड़ने वाली हों, पर दुख इतना ही है काम बिगड़ता जाता है। मैं ने आप से अभी नहीं कहा, आज पारवती ने अपने यहां के सब काम काजियों को निकाल दिया। भगमानी बीसों बरस की पुरानी टहलुनी थी, आज उस को भी छुड़ा दिया। वह सब मेरे यहां रोते आये थे-इन सब से मेरा बड़ा काम चलता था।

कामिनी मो.। पारबती कैसी चाल की है, कुछ समझ में नहीं आता। पर वह कामकाजी लावेगी कहां से—रखेगी तो यहां ही के लोग! यहां कौन ऐसा है जो मेरा दवाव नहीं मानता, बासमती! पारबती को जो तुम ने न पछाड़ा, तो कुछ न किया।

बासमती। अपने चलते तो मैं चूकती नहीं, पर होनी को क्या। करूं मैं भी यही कहती हूं—जो पारबती ने मुंह की न खाई तो कुछ न हुआ।

कामिनी मो.। अब की कोई बड़ी गहरी चाल चलना चाहिये।

बासमती। मैं ने समझा, अच्छा अब मैं इसी सोच में जाती हूं।

यह कह कर वह चली गई।

—०—

## सत्तरहवीं पंखड़ी।

आज भादों सुदी तीज है, दिन का चौथा पहर बीत रहा है, इसतिरियों के मुंह में अब तक न एक अन्न गया, न एक बूंद पानी पड़ा, पर वह वैसीही फुरतीली हैं, काम काज करने में उन का वही चाव है, दूसरे दिन कुछ ढिलाई भी होती, पर आज उस के नाम से भी नाक भौं चढ़ती है, घर घर में, चहल पहल है, बच्चों तक में उमंग भरा है। धीरे धीरे घड़ी भर दिन और रहा, बनी ठनी इसतिरियां घर घर से निकलने लगी, थोड़ी ही बेर में गांव के बाहर ठौर ठौर चलती फिरती फुलवारियां दिखलाई पड़ीं। बिछिया और पैजनियों की छमाछम, कड़े छड़े और घुंघुरुओं की झनकार से, सोती

हुईं दिसायें भी जाग उठीं—पौन में तीन पनने लगी। झुण्ड की झुण्ड इसतिरियां दक्खिन से उत्तर को जा रही थीं, उन के कोयल के मतवाले करनेवाले कंठ से जो गाना हो रहा था, उस को सुन कर जोगियों के भी छक्के छूटते थे। इसतिरियों के झुण्ड में कभी कभी हटो बचो की धुन भी सुनाई देती थी, और देखते ही देखते कहार पालकियां लिये बहुत ही फुर्ती से इन के बीच में हो कर निकल जाते थे। इन पालकियों में गांव की थोड़े दिन की आई हुई धनियों की पतोहें और किसी किसी बड़े धनी के घर की इसतिरियां जाती थीं।

बंसनगर गांव के उत्तर ओर सरजू नदी अठखेलियां करती हुयी बह रही है, इसतिरियों का झुण्ड धीरे धीरे आगे बढ़ कर इसी नदी के तीर पर पहुंचा, बंसनगर गांव के ठीक साम्हने उस पार चांदपूर गांव था। सरजू का ढंग है—सदा अपनी धारों को पलटती रहती है, पर इन दोनों गांवों के पास की धरती कंकरीली थी, इस लिये इन दोनों गांवों के बीच वह सदा एक रस बहती—यह दोनों गांव ब्योपार की मंडी थे। इस पार और उस पार बड़े अच्छे अच्छे घाट थे। आज दोनों ओर घाट पर इसतिरियों की बड़ी भीड़ है। सरजू नदी कल कल बह रही है, सूरज की किरनें उस में पड़ कर जगमगा रही हैं, लहर पर लहर उठती है—सूरज की किरनों में चमकती है—और फिर सरजू की बहती हुई धार में मिल जाती है। पानी के तल पर मगर घड़ियाल उतरा और डूब रहे हैं, पाल से उड़ती हुई नावें आ जा रही हैं, छोटी छोटी डोंगियां लहरों में डगमगा रही हैं, और दूसरी बहुत सी नावें घाट के एक ओर पांती बांधे चुप चाप खड़ी हैं,

जब कभी लहरें उठ कर घाट से टकराती हैं, एक एक बार रह रह कर यह नावें धीरे धीरे हिल उठती हैं । सरजू तीर पर दोनों पार बहुत से मंदिर और शिवाले थे, उन में से बहुतों पर धुजा लगी हुई थी, बहुतों पर कलस थे, तीर पर भांत भांत के फूले फले पेड़ थे, और इन सब की छाया जल में पड़ रही थी । धीरे धीरे तीर की इसतिरियों की छाया भी जल में पड़ी । जब कभी जल थिर रहता, उस घड़ी दोनों पार पानी के भीतर एक बहुत ही अच्छी बसी हुई बस्ती दिखलाई पड़ती, और जब लहरें उठतीं, नहीं पानी के हिलने पर उस में सिलवटें पड़तीं, उस घड़ी टुकड़े टुकड़े हो कर गांव उजड़ता दिखलाई देता, और धीरे धीरे जल में लोप हो जाता । जल में यही सब लीला हो रही है—इसतिरियां नहा धो रही हैं—और उन के गीतों पर सरजू का जल लहरों के बहाने हाथ उठा उठा कर ताल पर नाच रहा है—और सारा गांव सरजू पर खड़ा हो कर यह सब लीला देख रहा है ।

सरजू के तीर पर पचास इसतिरियों के साथ बासमती खड़ी है, उस के साथ की बहुत सी इसतिरियां नहा धो चुकी हैं, बहुत सी नहा धो रही हैं, इसी बीच देवहूती अपनी मौसी और पड़ोस की दूसरी दो इसतिरियों के साथ वहां आई । आते ही न जाने क्या बात हुई जो देवहूती की मौसी और बासमती में बातचीत होने लगी, बासमती के साथ की दो चार इसतिरियां इन को घेर कर खड़ी हो गईं । देवहूती की साथ वाली पड़ोस की दो इसतिरियों को भी बासमती के साथ की दूसरे दो इसतिरियों ने बातों में फांसा, और इन में से भी एक एक को घेर कर बासमती के साथ की पांच पांच

चार चार इसतिरियां खड़ी हो गईं। देवहूती आगे बढ़ गई, ज्यों वह पानी के पास पहुंची, वों उस को भी घेर कर बासमती के साथ की बीस पचीस इसतिरियां खड़ी हो गईं। इन में से एक जो देवहूती के जान पहचानवाली थी, उस से बोली, देवहूती देखो यह कैसा अच्छा फूल है!

देवहूती। हां! बहुत अच्छा फूल है, क्या तुम ने बनाया है सरला! इस की पंखड़ियां बहुत ठीक उतरी हैं, मैंने पहले इस को बेले का फूल ही समझा था।

सरला। क्या मैं ऐसा फूल बना सकती हूं—भाभी ने बनाया है। तभी आज इन को पालकी पर चढ़ा कर लिवा लाई हूं। सब से बड़ी बात इस की महंक है—देखो न! यह फूल कैसा महंकता है!

देवहूती। क्या इस में मंहक भी है! फूल तो बहुतों को बनाते देखा है, पर उस में महंक भी वैसी ही बना देना, निरी नई बात है!

सरला। देखो न! हाथ कंगन को आरसी क्या।

देवहूती ने हाथ में लेकर फूल सूंघा, सूंघते ही वह अचेत हो गई, उस के हाथ के कपड़े सरजू में गिर पड़े जो आगे को बह निकले, और इसी बीच अचानक कहारों ने एक पालकी उठायी, जिस को ले कर वह सब वहां से बड़े वेग से चलते बने। कहारों के पालकी उठाते ही उन्हीं इसतिरियों में से एक इसतिरी दूसरी कई एक इसतिरियों के साथ उन्हीं बहते हुये कपड़ों को दिखला कर कहने लगी। हाय! हाय!! यह क्या हुआ, नहाते नहाते देवहूती कहां चली गई, अरे यह बिना बादलों बिजली कैसे टूट पड़ी। उन सभों का रोना चिल्लाना सुन कर बासमती ने दूर ही

से पूछा क्या है । क्या है !! तुम सब रोती क्यों हो ? उन्हीं में से एक ने कहा, अभी नहाने के लिये देवहूती जल में पैठी थी, इसी बीच न जाने कौन जीव उस को पानी में खींच ले गया। यह सुनते ही देवहूती की मौसी और उस के पड़ोस की दोनों इसतिरियां हाय, हाय, करते वहां दौड़ आईं। उन्हीं इसतिरियों में से कई एक ने देवहूती के पानी में उतराते हुये कपड़ों को दिखला कर कहा, इन्हीं कपड़ों को फींचने के लिये देवहूती पानी में पैठी थी, अभी नहाने और कपड़ा फींचने भी नहीं पाई थी—इसी बीच घड़ियाल जान पड़ता है, उस को पकड़ ले गया। उस की बातों को सुन कर सब चिल्ला उठीं, देवहूती के मौसी की बुरी गत हुई। वह पछाड़ खा कर धरती पर गिरी, और कहने लगी, मैं बहन से जा कर क्या कहूंगी । बासमती उस की यह गत देख कर भीतर ही भीतर बहुत सुखी हुई, पर ऊपर से दिखलाने के लिये, उस को समझाने बुझाने लगी। उन सब को रोते चिल्लाते सुन कर दो चार नावें दौड़ीं, कुछ लोग भी पानी में कूदे, सबों ने समझा कोई डूब गया है—पर जब यह सुना किसी को घड़ियाल उठा ले गया, उस घड़ी सब हाथ मल कर पछताने लगे—किसी से कुछ न करते बना।

थोड़ी ही बेर में घाट भर में यह बात फैल गई—देवहूती को घड़ियाल उठा ले गया । बड़ी कठिनाई से डरते डरते नहा धो कर देवहूती की मौसी दूसरी इसतिरियों के साथ घर आई। देवहूती का घड़ियाल के मुंह में पड़ना सुन कर पारबती की जो गत हुई, उस को हम लिख कर नहीं बतला सकते।

## अठारहवीं पंखड़ी ।

एक बहुत ही घना वन है, आकास से बातें करने वाले ऊंचे ऊंचे पेड़ चारों ओर खड़े हैं—दूर तक डालियों से डालियां और पत्तियों से पत्तियां मिलती हुई चली गई हैं। जब पौन चलती है, और पत्तियां हिलने लगती हैं, उस घड़ी एक बहुत ही बड़ा हरा समुन्दर लहराता हुआ सामने आता है। बड़, साल और पीपल के पेड़ों की बहुतायत है, पर बीच बीच में दूसरे पेड़ भी इतने हैं, जिस से सारा बन पेड़ों से कसा हुआ है। इस पर बेल, बूटे और झाड़ियों की भरमार! सूरज की किरनें कठिनाई से धरती तक पहुंचती थीं—कहीं कहीं तो उन का पहुंचना भी कठिन था-वहां सदा अंधेरा रहता। एक चौड़ी खोर ठीक बन के बीच से हो कर पच्छिम से पूरब को निकली थी, जहां पहुंच कर यह खोर लोप होती—वहां कुछ दूर तक बन बहुत घना न था। एक घड़ी दिन और है, बन में सर सर छद् फद् की धुन हो रही है, बरसाऊं बादल आकास में फैले हुये हैं, पत्तों को खड़खड़ाती हुई बयार चल रही है-धीरे धीरे सहज डरावना बन और भी डरावना हो रहा है।

जिस खोर की बात हम ने ऊपर कही है, उसी खोर से घोड़े पर चढ़ा हुआ एक जन पच्छिम से पूरब को जा रहा है। मुखड़े पर उमंग झलक रहा है, आंखों से जोत निकल रही है, पर माथे में सिलवटें पड़ रही हैं, जिस से जान पड़ता है वह अपने आप कुछ सोच रहा है। घोड़ा बहुत ही धीमी चाल से चल रहा है—पर कान उस के खड़े हैं, कभी कभी वह चौंक भी उठता है, उस घड़ी उस की हिनहिनाहट उस

सुनसान बन के सन्नाटे को तोड़ देती है, और [illegible] बार उसी हिनहिनाहट से सारा बन गूंज उठता है। धीरे धीरे तानपूरे का सा मीठा सुर चारों ओर फैलने लगा—साथ ही एक बहुत ही सुरीले गले से गीत होने लगा। पीछे तानपूरे का मीठा सुर और सुरीले गले की तान मिल कर एक हुई—और एक बहुत ही सुहावनी और जी को बेचैन करनेवाली धुन सारे बन में गूंजने लगी। यह धुन धीरे धीरे ऊपर बयार में उठी, पीछे खोर पर आने वाले के कानों तक पहुंची—वह चुप चाप गीत सुनने लगा—गीत यह था।

लावनी।

जग का कुछ ऐसा ही है ढंग दिखाता।<br>
यक रंग किसी का कभी नहीं दिन जाता॥<br>
जिस से पौधों ने समा निराला पाया।<br>
जिस ने बरबस था आंखों को अपनाया॥<br>
जिस के ऊपर था जी से भौंर लुभाया।<br>
बहती बयार को भी जिस ने महकाया॥<br>
वह खिला सजीला फूल भी है कुम्हलाता।<br>
यक रंग किसी का कभी नहीं दिन जाता॥ १॥<br>
देखा जिस को जग बीच धुजा फहराते।<br>
राजे जिस के पांवों पर सीस नवाते॥<br>
सुन कर के जिस का नाम वीर घबराते।<br>
जिस की कीरत सब ओर सभी थे गाते॥<br>
कल पड़ा हुआ वह धूल में है बिललाता।<br>
यक रंग किसी का कभी नहीं दिन जाता॥ २॥<br>
पड़ते थे जिस के तीन लोक में डेरे।<br>
जम भी डरता था जाते जिस के नेरे॥

के और देवते कितने जिस के चेरे।
कांपता सरग जिस के आंखों के फेरे॥
उस रावन को था गीध नोच कर खाता।
यक रंग किसी का कभी नहीं दिन जाता॥ ३॥
कब तक कितनी हम ऐसी कहें कहानी।
अपने जी में तू समझ सोच रे प्रानी॥
क्यों धरम छोड़ कर करता है मनमानी।
तू क्यों बिगाड़ता है अपना पत पानी॥
है पल भर में धन जोबन सभी बिलाता।
यक रंग किसी का कभी नहीं दिन जाता॥ ४॥१॥

घोड़े पर चढ़ा हुआ कौन जा रहा है, क्या यह बतलाना होगा? ऊपर के गीत को सुन कर आप लोग आप समझ गये होंगे, वह कौन है? जो न समझे हों तो मैं बतलाता हूं, वह कामिनीमोहन है। ऐसे घने बन में जहां सूरज की किरनें भी कठिनाई से जाती हैं, इस भांत अचानक गीत होता हुआ सुन कर वह सन्नाटे में हो गया, फिर गीत भी ऐसा जो उस के दोनों कानों को भली भांत मल रहा था—जो वह सोच रहा था, मानों उसी के लिये उस को जली कटी सुना रहा था। कामिनीमोहन बहुत घबराया, सोचने लगा, बात क्या है! हो न हो दाल में कुछ काला है, पर कोई ' -- के समझ में न आई। सोचते सोचते उस ने दे( कामिनीमोहऩ एक ओर बहुत घने नहीं हैं, गाने की धुन उसी तानपूरे के ' ा रही थी, गीत अब तक गाया जा रहा था। वह धीरे धीरे घोड़े पर से उतरा, घोड़े को पेड़ से बांधा, और चुप चाप पांव दबाये उसी ओर चला। ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ने लगा, गीत का गाया जाना रुकने लगा। पथ में

एक बहुत ही लम्बा चौड़ा बड़ का पेड़ था, डालियां इस की बहुत दूर तक फैली हुई थीं। और कई सौ जटायें डालियों से निकल कर धरती तक आई थीं। इस पेड़ तक पहुंचते पहुंचते गीत का गाया जाना रुक गया, सोचने पर जान पड़ा इसी पेड़ के नीचे गीत हो रहा था। कामिनीमोहन यहां पहुंच कर पेड़ के चारों ओर घूमा, बहुत सी चिड़ियां झाड़ियों में से निकल कर ऊपर उड़ गईं—छोटे छोटे वन के जीव इधर उधर भागते दिखलाई पड़े—पर और कोई कहीं न दिखलाई दिया। कामिनीमोहन का जीवट आप लोग जानते हैं, वह चाहता था, पेड़ पर भी चढ़ कर देखें, पर कुछ समझ बूझ कर न चढ़ा, उस के हाथ में एक तुपक थी, उस ने डर दिलाने के लिये, आकास में उस को चलाया, सन्नाटे में उस की धुन सारे वन में गूंज गई—कां कां करते बहुत से कौवे पेड़ पर से उड़ गये—पर और कुछ न हुआ। कामिनीमोहन कुछ घड़ी यहां खड़ा, न जाने क्या सोचता रहा—पीछे खोर की ओर फिरा।

खोर पर पहुंच कर वह घोड़े पर चढ़ा ही था, इसी बीच उस ने फिर तानपूरे की धुन और गाना सुना, अबकी बार तानपूरा बड़े उमंग से बज रहा था, गाना भी बहुत ऊंचे स्वर में हो रहा था, गीत यह थे—

गीत। त।
। ॥

कितने ही घर हैं पाप ने घाला।
कितने ही के किये हैं मुंह काले॥
पाप की बान है नहीं अच्छी।
ओ न पापों से कांपनेवाले॥

सोते हो तेल कान में डाले।
हैं धरम के तुझे पड़े लाले॥
नाव डूबेगी बीच धार तेरी।
ओ धरम के न पालने वाले॥

फिर इस भांत गाना होते सुन कर कामिनीमोहन बहुत चकराया, वह कुछ डरा भी, जी में आया, फिर उस पेड़ तक चलूं, और उस पर चढ़ कर देखूं क्या बात है, वह घोड़े पर से उतरा भी, पर इसी बीच उस को एक पालकी सामने से आती हुई दिखलाई पड़ी, कहार सब बड़े वेग से पालकी चला रहे थे, पांच लठधर पालकी के पीछे थे। पालकी के देखते ही कामिनीमोहन का जी उस ओर गया। उस ने कहारों से तो कहा ले चलो! ले चलो!! पर जो पांच लठधर पीछे दौड़ रहे थे, उन में से एक को पास बुलाया, जो चार रह गये थे, वह सीधे पालकी के साथ गये। जिस को कामिनीमोहन ने पास बुलाया था, जब वह पास आया, तो उस ने कहा, कपूर काम तो तुम ने बड़ा किया?

कपूर। मैंने कौन काम किया, जो कुछ किया सो बासमती ने किया, आज वह बड़ी चाल चली।

कामिनीमोहन। हां! कहो तो कैसे क्या क्या हुआ।

कपूर। आप घोड़े पर चढ़ कर धीरे धीरे चलिये, मैं भी कहता चलता हूं, नहीं कहार सब बहुत आगे बढ़ जावेंगे।

कामिनीमोहन घोड़े पर चढ़ा, धीरे धीरे आगे बढ़ा, वों हीं वन में तानपूरे के साथ गीत होता हुआ उस को फिर सुनाई पड़ा, अब की बार पूरी पूरी टीप लग रही थी, पौन में तान की लहर सी फैल रही थी, गीत यह था।

गीत।

फिर रहे हो बने जो मतवाले।
तो किसी के पड़ोगे तुम पाले॥
जो कसक काढ़ लेगा सब दिन की।
ओ किसी की न माननेवाले॥

इस गीत को कपूर भी सुन रहा था, उस ने कहा बाबू वन में यह आज गाना कैसा हो रहा है? इस ओर मैं बहुत आया गया हूं, पर इस भांत गाना होते कभी नहीं सुना। कामिनीमोहन ने कहा जान पड़ता है यह जागती हुई धरती है, तभी यहां ऐसा गाना सुनाई दे रहा है, नहीं तो और कोई बात तो समझ में नहीं आती—जाने दो इन पचड़ों को—बनही है—तुम अपनी बात कहो।

कपूर। आप के कहने से जिस भांत दस दस पांच पांच दे कर गांव की पचास इसतिरियों को बासमती ने आप के काम के लिये गांठा था। आप जानते हैं। बेले के बने हुए फूल में जो अचेत करनेवाली औखध लगाई गई थी, उस का भेद भी आप से छिपा नहीं है। इन्हीं पचास इसतिरियों और बने हुए बेले के फूल ने आप का सब काम कर दिया।

यह कह कर कपूर ने सारी बातें कह सुनाईं, पीछे कहा, फूल को सूंघ कर ज्यों देवहूती अचेत हुई वों पास की पांच छ इसतिरियों ने उस को पकड़ कर एक पालकी में सुला दिया, इसी पालकी में सरला की भौजाई घाट पर आई थी। कहार सब भी साट में थे, ज्यों देवहूती पालकी में सुलाई गई, वों उन सबों ने पालकी उठा दी। पहले यह सब सीधे सरला की भावज के दुआरे आये, वहां कुछ घड़ी पालकी उतारी, पीछे पालकी को उठा कर कुछ दूर उस को इस

भांत ले चले, जैसे कोई रीती पालकी ले चलता है, गांव के बाहर आकर वह सब पौन मे बातें करने लगे—और अब तक इसी ढंग से चले आ रहे हैं।

कामिनीमोहन। यह तो हुआ पर क्या इस बात को उस की मौसी ने नहीं जाना?

कपूर। वह कैसे जानती, जब कहार सब पालकी उठा कर चल दिये, उन्हीं इसतिरियों में से दो एक ने देवहूती के कुछ कपड़ों को पानी में दूर फेंक दिया, और उन्हीं को दिखला कर उन सबों ने ऐसी बातें कहीं, जिस से उस की मौसी के जी में उस के घड़ियाल के मुख में पड़ने की बात ठीक जंच गई। इस घड़ी सारे गांव में यह बात फैल गई है, देवहूती को घड़ियाल उठा ले गया।

कामिनीमोहन। वासमती अच्छी चाल चली—पारवती का कान काट लिया।

कपूर। बात सच है, पर यह इसतिरियों के बीच की बात है, बहुत दिन न छिपेगी।

कामिनीमोहन। न छिपे, काम निकल जाने पर कोई जान कर ही क्या करेगा। मैं देवहूती से ही ऐसी बातें कहलाऊंगा, जिस को सुन कर सभी हाथ मलते रह जावेंगे।

कपूर। राम ऐसाही करें। पर इस घड़ी जो करना है, उस को कीजिये, देखिये पालकी खोर तक पहुंच गई।

कामिनीमोहन। कहारों से कहो पालकी रख दें।

कपूर ने पुकार कर कहा, कहारों ने पालकी रख दी, और घर की ओर फिरे। अब जो चार लठधर पीछे थे, वह पालकी ले कर बन में धंसे, कपूर ने इन चारों की आंखों पर पट्टी बांध दी थी। दूर तक वह सब इसी भांत पालकी लेकर

चले—कपूर आगे आगे था । पीछे इन सबों से भी पालकी रखा की गई । कपूर साथ साथ आकर इन सबों को खोर तक पहुंचा गया । यहां पहुंचने पर इन की पट्टी खोल दी गई—पट्टी खुलने पर यह चारों भी घर फिर आये । कपूर फिर बन में चला गया ।

---

## उन्नीसवीं पंखड़ी ।

बन में जहां जा कर खोर लोप होती थी, वहां के पेड़ बहुत घने नहीं थे । डालियों के बहुतायत से फैले रहने कारण, देखने में पथ अपैठ जान पड़ता, पर थोड़ा सा हाथ पांव हिला कर चलने से इस ओर से बन के भीतर सभी घुस सकता । पथ यहां भूल भुलइयां की भांत का था, भूल भुलइयां से बच कर आध कोस तक सीधे उत्तर मुंह चलने पर कई एक खंडहर दिखलाई पड़ते—इन खंडहरों के तीन ओर बहुत ही घना बन था । इन खंडहरों में एक बहुत बड़ा खंडहर था, यह बाहर से देखने पर सब ओर गिरा पड़ा जान पड़ता । पर इस के भीतर एक बहुत ही अच्छा घर था, जिस को हम गुदड़ी का लाल कहेंगे । इस घर का आंगन बहुत ही सुथरा था, कोठे कोठरियां बहुत ही चिकनी और बढ़ियां थीं, बाहर और भीतर के सब दुआरों में अच्छी अच्छी किवाड़ियां लगी थीं । इस घर के बाहर पांच बड़े मोटे मोटे और काले भील पहरा दे रहे थे । इसी घर की एक छोटी कोठरी में, जिस में एक छोटा सा दुआरा लगा है—देवहूती मन मारे चुप चाप एक चटाई पर बैठी है, पासही एक बढ़ियां चौकी पर कामिनीमोहन बैठा है । दो घड़ी रात बीत गइ

है, एक पीतल की दीवट पर एक पीतल का चौकोर दीया जल रहा है—दीये में चारो ओर चार मोटी मोटी बत्तियां लगी हैं।

कामिनीमोहन ने देवहूती को चुप देख कर कहा, क्या तुम न मानोगी देवहूती ?

देवहूती। मैं न मानूंगी तुम मेरा क्या करोगे ?

कामिनीमोहन। तुम को मेरी बात माननी पड़ेगी, मैं तुमारा सब कुछ कर सकता हूं। क्या तुम इतना भी नहीं समझती हो, मैंने आज क्या किया ! अब तुमारी ऐंठ नहीं निबह सकती। इस घड़ी मैं जो चाहूं करूं, तुमारा किया कुछ नहीं हो सकता। पर रस में मैं विख नहीं घोलना चाहता।

देवहूती। क्या देवी देवते झूठ हैं ! क्या परमेसर सो गया !! क्या धरम रसातल को चला गया !! क्या बन देवियां मर गईं !!! जो तुम ऐसा कहते हो। कभी तुम ने किसी सती इसतिरी का सत इस भांत बिगाड़ा है—कामिनीमोहन ऐसी बातें न कहो—नहीं अभी अनरथ होगा।

कामिनीमोहन। हां ! ऐसा !!! यह जीवट उस दिन कहां था—जिस दिन तू पहली बार मेरे हाथों पड़ी। उस दिन मुझ को बातों में फांस कर तू निकल गई—पर अब वह दिन दूर गये। ऐसी झांझ मैंने बहुत देखी है।

देवहूती। उस दिन मैं जो थी, आज भी मैं वही हूं। उस दिन जो तुम थे, आज भी तुम वही हो। न तुम उस दिन कुछ कर सके—न आज कुछ कर सकोगे। उस दिन तुमारे हाथों से बचने के लिये मुझ से जो करते बन पड़ा, मैंने किया, आज जो करते बनेगा, फिर करूंगी। इस पर

मुझ को धरम का बल है! देवतों का भरोसा है!! भगवान का सहारा है!!! फिर तुम मुझ को क्या धमकाते हो। मुझ को मरना होगा, मैं मरूंगी, पर तुमारी बात न मान कर अपना धरम न खोऊंगी।

कामिनीमोहन। देवहूती मैं अपने जी को बहुत सम्हालता हूं। तुमारी इन लगती बातों का ध्यान नहीं करता। पर इतना न बढ़ो। नहीं अभी तुम को जान पड़ेगा—मैं क्या कर सकता हूं।

देवहूती कामिनीमोहन तुम मेरा जी न जलाओ, देखो मेरे पास यह बहुत ही कड़ा बिख है—तुम मेरी ओर दो डग बढ़े नहीं, और मैं इस को खा कर मरी नहीं—मुझ मरती का तुम क्या कर सकते हो। उस दिन जो मेरे पास बिख होता, मैं तेरे सामने रंडियों का सा स्वांग न लाती। तुमारी उस दिन की चाल ही ने मुझ को अपने पास बिख रखना सिखला दिया है।

कामिनीमोहन देवहूती का जीवट देख कर चक्कर में आ गया। उस के ऊपर बहुत कड़ाई करना अच्छा न समझ कर बोला। देवहूती तुम क्यों मरने के लिये इतना उतारू हो, क्या तुम को अपना जी प्यारा नहीं है, मरने में क्या रक्खा है, मरनेवाले के लिये चारो ओर अंधेरा है।

देवहूती। जो पापकर के मरते हैं, उन्हीं के लिये चारो ओर अंधेरा है। जो धरम के लिये मरते हैं, उन के लिये सब ओर वह उंजाला है, जिस पर सूरज की आंख भी नहीं ठहरती। मुझ को धरम प्यारा है, अपना जी प्यारा नहीं है। धरम के लिये मैं जी निछावर कर सकती हूं।

कामिनीमोहन। देवहूती! तुम सब बातों में धरम की

दुहाई देती हो, पर क्या यह जानती हो धरम किसे कहते हैं ? काया के कसने में धरम नहीं है—खाने, पीने, सुख भोगने, में धरम है-जिस से जी का बहुत कुछ बोध होता है।

देवहूती। तुम्हारे लिये यही धरम होगा, पर हम तो उसी को धरम समझती हैं, जिस को हमारी यहां की पोथियों ने धरम बतलाया है, जिस को हमारे बड़े बूढ़े धरम मानते आये हैं। तुमारा धरम ऐसा है, तभी न वह काम करते फिरते हो, जिस को चोर और डाकू भी नहीं कर सकते।

कामिनीमोहन। तुमारे फूल ऐसे होठों से इतनी कड़वी बातें अच्छी नहीं लगतीं देवहूती ! अब मैं चोर और डाकू से भी बुरा ठहरा !!!

देवहूती। तुम्हीं सोचो ! चोर किसी का धन हर लेते हैं—तो वह धन उस को फिर मिलता है। पर इसतिरियों का जो धन तुम हरते हो, वह उस को फिर इस जनम में कभी नहीं मिलता। डाकू बहुत करते हैं, किसी का जी लेते हैं, पर तुम इसतिरियों का धरम लेते हो, जो जी से कहीं बढ़ कर है। फिर मैंने क्या बुरा कहा ! ! !

कामिनीमोहन। जी की लगावट बुरी होती है ! मैं कोई ऐसी बात नहीं कहना चाहता, जिस से तुमारा जी दुखे, पर तुम जो भला बुरा मुंह में आता है, कह डालती हो। तुम्हारा जी जो खोल पर आया होता, तो तुम को हमारी पीर होती ! जिसी भांत का चुभा रहता है, वही पांव सम्हाल सम्हाल कर रखता है।

देवहूती। यह तुम कैसे जानते हो ! मुझ को तुम्हारी पीर नहीं है !! तुम बड़े बड़े पापों के करने में भी नहीं हिचकते—

तुम ने न जाने कितनी भोली भाली इसतिरियों का सत बिगाड़ा है ! न जानें कितने घर में फूट का बीज बोया है ! न जानें कितने भलेमानसों को मिट्टी में मिलाया है—तो क्या यह सब करके तुम योंहीं छूटोगे। नहीं इन सब पापों के पलटे तुम को नरक में बड़ा दुख भोगना पड़ेगा। यही सब समझ कर मैं तुम को पापों से बचाना चाहती हूं—ऐसी बातें कहती हूं जिस से फिर तुम पाप करने की ओर पांव न उठाओ। जो मुझ को तुम्हारी पीर न होती मैं ऐसी बात क्यों कहती ?

कामिनीमोहन। नरक सरग कहीं कुछ नहीं है ! परमेसर भी एक धोखे की टट्टी है !! तुम्हारा न मिलना ही मेरे लिये नरक है। तुमारे मिलने पर मैं इसी देह से सरग में पहुंच जाऊंगा।

जिस घड़ी कामिनीमोहन ने यह बातें कही, उस घड़ी सब घरों के साथ—देवहूती की चटाई—कामिनीमोहन की चौकी—घर में और जो कुछ था वह सब-अचानक हिल उठा, और चौथाई घड़ी तक हिलता रहा। यह देख कर देवहूती ने कहा, देखो कामिनीमोहन ! तुमारी बातें धरती माता से भी न सही गई—वह भी कांप उठीं। पहले लोगों ने बहुत ठीक कहा है, जब पाप का भार बढ़ जाता है तभी भूचाल आता है।

कामिनीमोहन। ऐसीही ऐसी बेजड़ बातें तुम्हारे जी में समाई हैं, तभी तो तुम किसी की नहीं सुनती [illegible] का भार बढ़ने ही से भूचाल नहीं आता, इस धरती [illegible] चारों ओ[illegible]ग है, जब वह कुछ जलनेवाला पाती है, तो उस में लवर फूटती है। यह लवर ऊपर निकलना चाहती है, पर धरती की कड़ाई से ऊ[illegible]र नहीं निकल सकती। उस घड़ी उस का एक धका

सा धरती के ऊपर लगता है। इसी धक्के से धरती हिल जाती है—और इसी को भूचाल कहते हैं। पर तुम तो मेरी बात मानती नहीं हो, मैं कहूं तो क्या कहूं।

देवहूती। अब मानूंगी! देखिये बहुत मन गढ़त अच्छी नहीं होती। अभी धरती कांपी है। अबकी बार छत टूट पड़ेगी।

कामिनीमोहन। भला हो छत टूट पड़े, तुमारे संग मरने में भी सुख है।

देवहूती। जो ऐसे ही मरना है तो किसी भले काम के लिये मरो, इस भांत मर कर पहुंचने में नरक भी में खलबली पड़ेगी।

कामिनीमोहन। अब इसी भांत मरूंगा देवहूती! नित्त के जलने से एक दिन किसी भांत मर जाना अच्छा है। देखो! मेरे पास लाखों की संपत है—बीसों गांव हैं—पचासों टहलुवे हैं—भांत भांत की फुलवाड़ियां हैं—रंग रंग की चिड़ियां हैं—अच्छे अच्छे खिलौने हैं—सजे सजाए हाथी हैं—पौन से बातें करनेवाले घोड़े हैं—खिली चमेली सी घरनी है—सारे गांव पर डांट है—पर मेरा जी इन में से किसी में नहीं लगता। रात दिन सोते जागते तुम्हारी ही सुरत रहती है। घड़ी भर भी चैन नहीं पड़ता—फिर मैं इन सब को ले कर क्या करूंगा। मैं इन सब को तुमारे ऊपर निछावर करता हूं, आप भी तुम पर निछावर होता हूं, पर तुम मुझ से जी खोल कर मिलो। जो न मिलोगी देवहूती तो अब किसी भांत मरना ही अच्छा है।

देवहूती। लाख, करोड़ की संपत क्या है! राज मिलने पर भी धरम गंवाया जा सकता। महाभारत में भीखम की कथा पढ़ो, रामायन में जानकी माता को देखो। जहां की

मिट्टी पौन पानी से यह लोग बने थे, वहीं की मिट्टी पौन पानी से मैं भी बनी हूं। फिर तुम मुझ को धन संपत की लालच क्या दिखलाते हो। रहा मरना जीना यह तुमारे हाथ नहीं, जब तुम्हारा दिन पूरा होगा, तुम आप मरोगे। इस के लिये मैं क्या कर सकती हूं।

कामिनीमोहन। तुमारा जी बड़ा कठोर है देवहूती। मैंने ऐसी रूखी बातें कभी नहीं सुनीं, पर जैसे हो मैं तुम को मनाऊंगा। तुम भी यह सोच लो, अब हठ छोड़ने ही में अच्छा है, यहां से तुम किसी भांत बाहर नहीं निकल सकती हो, न यहां कोई किसी भांत आ सकता है। सब भांत तुम मेरे हाथ में हो, कितने दिन तुम्हारी यह टेक रहेगी, हार कर तुम को मेरा होना ही पड़ेगा। पर आज तुम सारे दिन मरत रही हो, अब तक भूखी हो, इस पर पहर भर पीछे अभी तुम को चेत हुआ है, जी तुम्हारा झुंझलाया हुआ है, इस से कोई बात तुम्हारे मुंह से सीधी नहीं निकलती। लो अब इस घड़ी मैं जाता हूं, यह पलंग बिछा हुआ है, तुम इस पर सोओ, कलह मैं फिर मिलूंगा, पर मैं जो कहे जाता हूं, उस को भली भांत सोचना॥

जिस घड़ी कामिनीमोहन ने देवहूती से यह बातें कहीं, उसी समै उस को बन के भीतर फिर पहले की भांत मीठे गले से गीत होता हुआ सुनाई दिया। साथ ही तानपूरा भी वैसे ही मीठे सुर से बज रहा था। गीत यह था।

गीत।

पौन की जहां चौकड़ी न आती।
सूरज की किरन जहां न जाती।

है पौन जहां नहीं समाती।
घुसने जहां डीठ भी न पाती।
यह ईस वहां भी है दिखाता।
बिगड़ी सब है वही बनाता॥

देवहूती ने इस गीत को सुना, सुन कर बहुत सुखी हुई। और गीत के पूरा होते ही कहा, सुना! कामिनीमोहन!

कामिनीमोहन। हां! सुना क्यों नहीं, पर यह बन है, यहां ऐसी लीला बहुत हुआ करती है, चाहे तुम कुछ समझो, पर इन बातों से तुमारा कुछ भला नहीं हो सकता।

यह कह कर कामिनीमोहन उस कोठरी के बाहर हुआ। और बाहर आकर बन के भीलों से कहा, आज बन में रह रह कर यह गीत कैसा हो रहा है? भीलों ने कहा बाबू! हम लोगों की समझ में भी कोई बात नहीं आती। अच्छा हम दो जन जाते हैं, खोज लगा लाते हैं। यह कह कर दो भील बन के भीतर घुस गये—और बिचार में डूबा हुआ कामिनीमोहन घर के भीतर आया॥

---

## बीसवीं पंखड़ी।

धीरे धीरे रात बीती, भोर हुआ, बादलों में मुंह छिपाये हुये पूरब ओर सूरज निकला—किरन फूटी। पर न तो सूरज ने अपना मुंह किसी को दिखलाया, न किरन धरती पर आई। कल की बातें जान पड़ता है, इन को भी खल रही थीं। काले काले बादलों की ओट में चुप चाप दिन चढ़ने लगा, धीरे धीरे पहर भर दिन आया। देवहूती जिस छोटी कोठरी में रात बैठी थी—अब तक उसी में बैठी है। कल दिन रात भूखी रही—आज भोर ही मुंह धो कर कुछ

खाना पीना चाहिये था । पर उस ने अभी मुंह तक नहीं धोया । रात भी उस की जागते ही बीती है—आंखें चढ़ी हैं—मुखड़ा खिंचा हुआ है-पर घबराहट का उस पर नाम तक नहीं था—वह जैसा गंभीर पहले रहता-अब भी था। बासमती देवहूती के पास सब ठौर पहुंचा करती-आज यहां भी पहुंची । देवहूती को चुपचाप बैठे देख कर बोली। बेटी ! तुम कब तक इस भांत बैठी रहोगी, कल का दिन बरत में बीता, आज अभी तुम ने मुंह तक नहीं धोया, जो होना होगा, होगा, तुम अन्न पानी क्यों छोड़ती हो।

देवहूती। अभी एक बार धोखा खा चुकी हूं—और उस का फल भी भुगत रही हूं-क्या अबकी बार फिर किसी दूसरे फंदे में फंसाना है—जो तुम ऐसी चिकनी चुपड़ी बातें कहती हो। जिस का फूल सूंघ कर मेरी सुध बुध खो गई, उस का अन्न पानी खा पी कर न जाने कौन गत होगी !!! बासमती तुम क्यों इस भांत मेरे पीछे पड़ी हो ॥

बासमती। बेटी ! तू मेरी आंखों की पुतली है, मैं तेरे पीछे क्यों पड़ूंगी। तेरा दुख मुझ से देखा नहीं जाता, तेरी आंखों से आंसू गिरते देख कर मेरा कलेजा फटता है-तब मैं इस भांत दौड़ कर तेरे पास आती हूं—नहीं तो मुझ को इन पचड़ों से क्या काम था। पर मेरा भाग बड़ा खोटा है ! मैं जिस के लिये चोरी करती हूं—वही मुझ को चोर कहता है।

देवहूती। मैं तुम को भली भांत जानती हूं, बासमती ! बहुत लल्लो पत्तो अच्छा नहीं होता, तुम अपना काम करो, मेरे भाग में जो होना होगा-होगा। मैं तुम्हारी कोई नहीं हूं-पर तुम मुझ पर इतना प्यार जतलाती हो, जितना कोई

अपनी बेटी बेटे का भी नहीं करता, तुम्हारी यही बातें ऐसी हैं, जो तुम्हारे पेट का भेद बतलाये देती है।

बासमती। बेटी! तुम कहोगी क्या! कलजुग है न!!! अब के लड़के लड़कियां ऐसी ही हैं। हम लोग तो बड़ी सीधी हैं! गांव के लड़के लड़की को अपना समझती हैं—दूसरे के लड़कों को अपने लड़के से भी बढ़ कर प्यार करती हैं। हम लोगों का जैसा भीतर है, वैसा ही बाहर है, हम लोग कपट करना क्या जानें।

देवहूती। ठीक है! दूसरे के घर की बहू बेटी ... पती हैं, वे भोली भाली इसतिरियों को ठग कर ... पुरखों के हाथ में डाल देना, तुम ऐसी ... सतजुग की इसतिरियों का काम थोड़े ही है—यह तो कलजुग की इसतिरियों का काम है। बासमती! मेरा बड़ा भाग है—जो आज मैं यह जान गई—नहीं तो मेरा मन तुमारे ऊपर न जाने कितना कुढ़ता था।

बासमती। बेटी तुम अभी कल की लड़की हो—बहुत मत बढ़ो। तुमारा मन मेरे ऊपर कुढ़ता है—कुढ़े, पर मेरा मन तो तुम से नहीं कुढ़ता! मैं वही बात कहती हूं, जिस में तुम्हारा भला हो, पर उस को मानना तुम्हारे हाथ है।

देवहूती। मेरा बड़ा अभाग है! जो मैं इस बात को नहीं समझती हूं। सच है बासमती! तुम से बढ़ कर मेरा भला चाहने वाला कौन होगा!!!

बासमती। तुमारी ऐंठने की बान है—इस से तुम सब बातों में ऐंठती हो। मेरी अच्छी बात भी तुम को खोटी जान पड़ती है। पर सचमुच तुमारा बड़ा अभाग है, जो तुम इस भांत सोने को पांव दिखलाती हो, कामिनीमोहन ऐसा

चाहनेवाला भाग से मिलता है। डुबकी बहुत लोग लगाते हैं—पर मोती कोई पाता है। कामिनीमोहन पर कितनी इसतिरियां निछावर हुईं, पर कामिनीमोहन तुम पर आप निछावर है। इस पर लाखों की संपत आगे रखता है—सदा के लिये तुम्हारा दास बनता है—क्या यह बात ऐसी है—जिन पर तुम डीठ न डालो। पर मिठाई खाने के लिये भी मुंह चाहिये, भील की इसतिरियां घुंघुची का ही आदर करती हैं—वह लाल का मरम क्या जानें॥

देवहूती। सच कहा वासमती! बांदरी के गले में मोती की माला नहीं पोहती!!! पर कठिनाई तो यह है—इस पर भी मेरा जी नहीं छूटता।

वासमती। मुंह मत चिढ़ाओ बेटी! मेरी बातों को अपने जी में सोचो। क्या तुमारा यह जोबन सदा ऐसाही रहेगा? क्या आंखें ऐसीही रसीली रहेंगी? क्या गोरे,[illegible] नहीं है? पर ऐसीही छटा रहेगी? क्या देह ऐसीही चि[illegible] कर कभी रहेगी? क्या चितवन में सदा ऐसा ही टोना रहेग[illegible] जो अब नहीं!!! कुछ ही दिनों में, जोबन ढल जावेगा, [illegible] है? काली लग जावेगी, गालों में गड़हे पड़ेंगे, मोती ऐसे [illegible] की मिट्टी में मिलेंगे, देह पर झुर्रियां पड़ जायेंगी, और तुम्हारी स[illegible] धूल में मिल जावेगी। आज एक राजाओं सा धनी, आज किसी सा सुघर और छजीला, तुम्हारी सीधी चितवन का भि[illegible] गाता है। पर कुछ दिनों पीछे तुम्हारी ओर एक गया बीता आंख उठा कर न देखेगा—जो धोखे से किसी की आंख पड़ भी जावेगी—तो वह नाक भौं सिकोड़ने लगेगा। तुम्हारे यही दिन सब कुछ है—आगे क्या है—पर तुम इन्हीं दिनों बिख खाने बैठी हो—बलिहारी है इस समझ की॥

देवहूती । ठीक कहती हो बासमती ! जो मैं इन्हीं दिनों कुछ रुपया धन न लूंगी, तो आगे फिर कौन पूछेगा !!! अब तक रूप और जोबन बेचते रंडियों ही को सुना था । पर आज जाना, भले घर की बहू बेटियां—भली इसतिरियां—भी अपना रूप जोबन बेंचती हैं । झख मारते हैं लोग जो रंडियों को बुरा समझते हैं ।

बासमती । बहुत न बढ़ो ! बहुत सी भले घर की बहू बेटियां देखी हैं ! वह कौन इसतिरी है जो [illegible] मनीमोहन जैसे अलबेले जवान को देख कर उस की [illegible] । जिन को लाखों की संपत है, जिन का काम [illegible] प्ती है, मैं उन की बातें कहती हूं । जो तुमारी [illegible] पर बहुत हठ [illegible] में हैं । तुमारे पास न तो जैसे [illegible] अब कभी नहीं हो सकता—न पूरा पूरा धन है—न [illegible] बरस में भी यहां कोई नहीं है । [illegible] तुम इन [illegible] मुझ से रहा नहीं जाता, एक बात मैं फिर कहती हूं—जो तुम यहां का अन्न पानी काम में नहीं ला सकती हो, तो क्या बनफल और झरनों का पानी भी खा पी नहीं सकती हो ?

देवहूती । जो मेरे जी में आवेगा, मैं करूंगी । अपना मान सब को प्यारा होता है—पर तुम किसी भांत मेरी आंखों के सामने से दूर हो ।

बासमती । बेटी जितनी तुम टेढ़ी हो, मैं उतनी टेढ़ी नहीं हूं । जो तुम को मेरा यहां रहना अच्छा नहीं लगता तो मैं जाती हूं । मैं पहरे के भीलों से कहे जाती हूं—वह तुम को बन में जाने से न रोकेंगे । तुम बन में जा कर अपनी भूख प्यास बुझा आओ । पर भागना मत चाहना, नहीं तो भीलों के हाथ से दुख उठाओगी ।

यह कह कर बासमती चली गई ।

सीधे आंख उठा कर न देखेगा—इस से पाया जाता है, जब तक जोबन है, तभी तक पूंछ है, पीछे घोर अंधियाला है। तो क्या यही बातें ऐसी हैं—जिस से जोबन के दिनों जी खोल कर मनमानी करनी चाहिये? आंख मूंद कर पाप पुन्न का विचार छोड़ देना चाहिये? यह बातें तो ऐसी नहीं हैं!!! यह बातें तो हम को और डराती हैं, डंका बजा कर कहती हैं, च्यार दिन के जोबन पर मत भूलो, पाप मत कमाओ, यह [illegible] बाढ़ के पानी की भांत देखते देखते निकल जावेगा मरम पछताना ही हाथ रहेगा। इस से पहले ही समझता। सर्च करे, जो रंग इतना कच्चा है, उस के की माला नहीं पोहती [illegible] नहीं!

भी मेरा जी नहीं छूटता। [illegible] ! तुम नरक सरग का भेद

बासमती। मुंह मत चिढ़ाओ बेटी [illegible] भी जानती हो, पर जी में सोचो। क्या तुम्हारा यह जोबन सदा [illegible] किस पोथी में क्या आंखें ऐसीही रसीली रहेंगी? क्या गोरा [illegible] नहीं है? पर ऐसीही छटा रहेगी? क्या देह ऐसीही चि[illegible] कर कभी रहेगी? क्या चितवन में सदा ऐसा ही टोना रहेगा, जो अब नहीं!!! कुछ ही दिनों में, जोबन ढल जावेगा, [illegible] है? कालौ लग जावेगी, गालों में गड़हे पड़ेंगे, मोती ऐसे [illegible] की मिट्टी में मिलेंगे, देह पर झुर्रियां पड़ जायेंगी, और तुम्हारी स[illegible] धूल में मिल जावेगी। आज एक राजाओं सा धनी, आज सा सुघर और सजीला, तुम्हारी सीधी चितवन का भि[illegible] किसी है। पर कुछ दिनों पीछे तुम्हारी ओर एक गया बीता [illegible] आंख उठा कर न देखेगा—जो धोखे से किसी की आंख पड़े भी जावेगी—तो वह नाक भौं सिकोड़ने लगेगा। तुम्हारे यही दिन सब कुछ है—आगे क्या है—पर तुम इन्हीं दिनों बिस खाने बैठी हो—बलिहारी है इस समझ की!!

बासमती। यह तो विख का पचड़ा हुआ—पर अन्न पानी को छोड़ कर जी को कलपा कलपा कर मारना क्या है? यह कोई पुन्न होगा?

देवहूती। नहीं यह भी पाप है! पर अन्न पानी कौन छोड़ता है। यहां दो चार दिन मैं अन्न पानी न खाऊंगी, तो क्या अब मैं अन्न पानी खाऊंगी ही नहीं? ऐसा तुम समझ सकती हो—मेरा यह विचार नहीं है। मुझ को यहां अन्न पानी खाने पीने में भी कोई अटक नहीं है। पर क्या करूं अब तुम लोगों की परतीत नहीं रही।

बासमती। जो जी में आवे करो, जब तुम को अपनी ही बात रखनी है, तो मैं कहां तक कहूं। पर बहुत हठ अच्छा नहीं होता, यहां से तुमारा छुटकारा अब कभी नहीं हो सकता—दो चार दिन नहीं दो चार बरस में भी यहां कोई नहीं पहुंच सकता। पर मुझ से रहा नहीं जाता, एक बात मैं फिर कहती हूं। जो तुम यहां का अन्न पानी काम में नहीं ला सकती हो, तो क्या बनफल और झरनों का पानी भी खा पी नहीं सकती हो?

देवहूती। जो मेरे जी में आवेगा, मैं करूंगी। अपना प्रान सब को प्यारा होता है—पर तुम किसी भांत मेरी आंखों के सामने से दूर हो।

बासमती। बेटी जितनी तुम टेढ़ी हो, मैं उतनी टेढ़ी नहीं हूं। जो तुम को मेरा यहां रहना अच्छा नहीं लगता तो मैं जाती हूं। मैं पहरे के भीलों से कहे जाती हूं—वह तुम को बन में जाने से न रोकेंगे। तुम बन में जा कर अपनी भूख प्यास बुझा आओ। पर भागना मत चाहना, नहीं तो भीलों के हाथ से दुख उठाओगी।

यह कह कर बासमती चली गई।

## इक्कीसवीं पंखड़ी ।

वासमती के चले जाने पीछे देवहूती अपनी कोठरी में से निकली, कुछ घड़ी आंगन में टहलती रही, फिर ड्योढ़ी में आई । वहां पहुंच कर उस ने देखा, वासमती पहरे के भीलों से बात चीत कर रही है । यह देख कर वह किवाड़ों तक आई—और बहुत फुर्ती के साथ किवाड़ों को लगा कर—फिर भीतर लौट गई । जब देवहूती अपनी कोठरी के पास पहुंची—देखा उस कोठरी में से एक जन आंगन की ओर निकला आ रहा है । यह देख कर वह भैचक बन गई—सोचा राम राम कर के अभी वासमती से पीछा छूटा है—फिर यहां बिपत कहां से आई । बड़ा अचरज उस को इस बात का था—यह कोठरी में आया तो कैसे आया ? उस में तो कहीं से कोई पथ नहीं जान पड़ता !!! देवहूती घबराने को तो बहुत घबराई—पर उस के जी को कुछ ढाढ़स भी हुआ । उस ने पहचाना यह वही जन है—जिस ने उस अंधियाली रात में उस के कोठे पर कामिनीमोहन से उस का सत बचाया था । देवहूती यह सब जान बूझ कर कुछ सोच रही थी, इसी बीच उस ने पास आकर कुछ दूर से पूछा, देवहूती ! मुझ को पहचानती हो ?

देवहूती ने सर नीचे कर के कहा । क्यों नहीं पहचानती हूं ! जिस ने प्रान से भी प्यारे मेरे धरम की [illegible] क्या मैं उस को भूल सकती हूं । [illegible]

आये हुये जन का नाम देवसरूप [illegible] समझ गये होंगे । देवहूती की बातों को सु[illegible] यह आप लोग अब मैं तुम से कुछ बात चीत करने के लिये यहां [illegible] उस ने कहा । [illegible]या हूं—मुझ

से बात चीत करने में तुम को कुछ आनाकानी तो नहीं है? मैं नहीं चाहता बिना पूछे तुम से सारी बातें कहने लगूं।

देवहूती। मुझ को चेत है—आप ने उस दिन कहा था, जो लोग धरम की रच्छा के लिये कभी कभी इस धरती पर दिखलाई देते हैं—मैं वही हूं। जो सचमुच आप वही हैं तो आप से बातचीत करने में मुझ को कुछ आनाकानी नहीं है। पर बात इतनी है, इस भांत आप से बातचीत करते मुझ को इस सूनसान घर में जो कोई देख लेगा—तो न जाने क्या समझेगा! जो कोई न देखे तो धरम के विचार से भी किसी सूनसान घर में किसी पराई इसतिरी का पराये पुरुष के साथ रहना और बातचीत करना अच्छा नहीं है। आप बड़े लोग हैं, इन बातों को सोच कर जो अच्छा जान पड़े कीजिये, मैं आप से बहुत कुछ नहीं कह सकती।

देवसरूप। मैं यह जानता हूं बासमती यहां आई हुई है—दूसरी बातें जो तुम कहती हो मुझ को भी उन का वैसा ही विचार है। मैं कभी यहां न आता, पर एक तो मैंने देखा, बिना अन्न पानी तुम मर जाना चाहती हो। दूसरे आज अभी एक ऐसी बात हुई है, जिस से तुम्हारी सारी बिपत कट गई। मुझ को यह बात तुम को सुनानी थी, इसी लिये मुझ को यहां आना पड़ा।

देवहूती। वह कौन सी बात है जिस से मेरी सारी बिपत कट गई? आप दया करके उस को बतला सकते हैं?

देवसरूप। कामिनीमोहन कल्ह रात ही में बासमती को यहां छोड़ कर घर चला गया था। आज दिन निकले वह गांव से इस वन की ओर घोड़े को सरपट फेंकता हुआ आ रहा था। इसी बीच एक गीदड़ एक झाड़ी से दूसरी झाड़ी में ठीक

घोड़े के सामने से हो कर दौड़ता हुआ निकल गया। घोड़ा अचानक चौंक पड़ा—और उस पर से धड़ाक से कामिनीमोहन नीचे गिर पड़ा। गिरते ही उस का सर फट गया—और वह अचेत हो गया। उस के लोग जो पीछे आ रहे थे—घड़ी भर हुआ उस को उठा कर घर ले गये। जैसी चोट उस को आई है—उस से अब उस के बचने का कुछ भरोसा नहीं है—मैं इसी से कहता था तुमारी सारी बिपत कट गई॥

देवहूती। कामिनीमोहन ने अपनी करनी का फल पाया है, और मैं क्या कहूं!!! पर सचमुच क्या आप कोई देवता हैं, जो इस भांत बिना किसी अरथ के दूसरों का दुख दूर करते फिरते हैं।

देवसरूप। मैं देवता नहीं हूं—एक बहुत ही छोटा जीव हूं। उस दिन मैं ने यह बात इस लिये कही थी—जिस में कामिनीमोहन डर कर पाप करना छोड़ देवे।

देवहूती। अभी आप को मुझ से कुछ और कहना है?

देवसरूप। दो बातें कहनी हैं। एक तो तुम कुछ खाओ पीओ—दूसरे यहां का रहना छोड़ कर घर चलो। तुमारे मा की तुमारे बिना बुरी गत है—उन की दसा देख कर पत्थर का कलेजा भी फटता है।

देवहूती। आप का कहना सर आंखों पर—आप में बड़ी दया है। पर आप जानते हैं इसतिरियों का धरम बड़ा कठिन है! आप ने मेरी बहुत बड़ी भलाई की है—मेरा रोआं रोआं आप का रिनी है। पर इतना सब होने पर भी आप निरे अनजान हैं—आप जैसे अनजान और बिना जान पहचान के पुरुष के साथ मैं कहीं आ जा नहीं सकती। दूसरे जो दो दिन पीछे मैं इस भांत अचानक घर चली चलूं तो मा न जाने

क्या समझेंगी। अभी तो उन्हों ने यही सुना है—मैं डूब कर मर गई—रो कलप कर उन का मन मान ही जावेगा। पर जो कहीं उन के मन में मेरी ओर से कोई बुरी बात समाई—तो अनरथ होगा—मेरा उन का दोनों का जीना भारी होगा। रहा कुछ खाना पीना, इस के लिये अब आप कुछ न कहें। मैं समझ बूझ कर जो करना होगा करूंगी।

देवसरूप। बात तुम बहुत ठीक कहती हो—मैं ने तुमारी इन बातों को सुन कर बहुत सुख माना। पर इतना मुझ को और कहना है—इस बन से तुमारा छुटकारा बिना मेरी परतीत किये नहीं हो सकता।

देवहूती। क्या मैं आप की परतीत नहीं करती हूं—यह आप न कहें। मेरा धरम क्या है इस बात को आप सोचिये। और बतलाइये मुझ को क्या करना चाहिये। इस जग में सैकड़ों बातें लोग ऐसी करते हैं—जिन में ऊपर से देखने में उन का कोई अरथ नहीं होता—पर समै पा कर उन्हीं बातों में उन की बड़ी दूर की चाल पाई जाती है। आज जिस को किसी की भलाई के लिये अपना तन मन धन सब निछावर करते देखते हैं—कल्ह उसी को उस के साथ अपने जी की किसी बहुत ही छिपी चाह के लिये ऐसा बुरा बरताव करते पाते हैं—जिस को देख कर बड़े पापी के भी रोंगटे खड़े होते हैं। यह बातें ऐसी हैं जिन का मरम आप जैसे बड़े लोग भी ठीक ठीक नहीं पाते। इसतिरियां क्या हैं जो इन भेद की बातों का ओर छोर पा सकें। इसीलिये उन को यह एक मोटी बात बतलाई हुई है—अपने इने गिने जान पहचान के लोगों को छोड़ कर दूसरे को पतिआना उन का धरम नहीं है। मैं आप से इन्हीं बातों को सोचने

के लिये कहती हूं। रहा इस बन से छुटकारा पाना ! यह एक ऐसी बात है जिस के लिये मुझ को तनिक घबराहट नहीं है– अपजस के साथ घर लौटने से जस के साथ बन में मरना अच्छा है।

देवसरूप–मैं तुमारे इन बिचारों को सराहता हूं ! तुमारे धीरज करने से ही तुमारी सारी बिपत कटती है।

देवसरूप के इतना कहते ही उसी कोठरी में से एक जन और देवहूती की ओर आता दिखलाई पड़ा। इस के सिर पर बड़ी बड़ी जटायें थीं, बहुत ही घनी उजली और लम्बी दाढ़ी थी–जो छाती पर भोंड़ेपन के साथ फैली थी, मुखड़े पर तेज था, पर यह तेज निखरा हुआ तेज न था, इस में उदासी की छींट थी। माथे में तिलक, गले में तुलसी की माला, बायें कंधे पर जनेऊ, और हाथ में तूंमा था। अंचले की भांत एक धोती बंधी थी––जो कठिनाई से ठेहुने के नीचे तक पहुंचती थी। सुभाव बहुत ही सीधा और भला जान पड़ता था, भलमनसाहत रोयें रोयें से टपकती थी। जब यह देवहूती के पास पहुंचा, देवसरूप ने कहा, देवहूती इन की ओर देखो, इन को मत्था नाओ, और अब तुम इन के साथ जा कर कुछ खाओ पीओ। मैं देखता हूं तुम्हारा जी गिरता जाता है–इन के साथ जाने में भी क्या तुम को कोई अटक होगी ?

देवहूती ने बड़ी कठिनाई से सर उठा कर इस दूसरे जन की ओर देखा, देखते ही चौंक उठी, मानो सोते से जाग पड़ी। उस के जी में बड़ा भारी उलट फेर हुआ––कुछ घड़ी वह ठीक पत्थर की मूरत बन गई। पीछे उस की आंखों से आंसू बह निकले। देवसरूप ने उस दूसरे जन का भी

रंग कुछ पलटता देख कर कहा, देखो इन सब बातों का अभी समै नहीं है—इस घड़ी चुपचाप यहां से निकल चलना चाहिये, फिर जैसा होगा देखा जावेगा। यहां ही रहने में भी अब कोई खटका नहीं है—बासमती कुछ कर नहीं सकती। पर जब तक कामिनीमोहन का क्या हुआ, यह ठीक ठीक न जान लिया जावे। तब तक किसी हाथ आई बात में चूकना अच्छा नहीं। देवसरूप की बातों को सुन कर दूसरा जन कोठरी की ओर चला—देवहूती बिना कुछ कहे उस के पीछे चली—इन दोनों के पीछे देवसरूप चला—तीनों कोठरी में आये ॥

कोठरी में पहुंच कर देवहूती ने देखा वहां की धरती में एक सुरंग है—और उसी सुरंग में से हो कर नीचे उतरने को ...दिया है। इसी पथ से हो कर यह तीनों जन नीचे उतरे। नीचे उतर कर देवसरूप ने वहीं लटकती हुई एक लम्बी रस्सी को पकड़ कर खींचा, उस के खींचते ही सुरंग का मुंह मुंद गया—और नीचे ऊपर पहले जैसा था—ठीक वैसा ही हुआ। पीछे यह तीनों जन नीचे ही नीचे वन में एक ओर निकल गये ॥

---

## बाईसवीं पंखड़ी।

दिन बीतता है, रात जाती है, सूरज निकलता है, फिर डूबता है, साथ ही हमारे जीने के दिन घटते हैं। हम लोगों से कोई पूछता है, तो हम लोग कहते हैं, मैं बीस बरस का

हुआ, कोई कहता है मैं चालीस का हुआ। कहने के समै तनक भी हिचिक नहीं होती—मुखड़ा वैसाही हंसता रहता है—मानों हमलोग जानते ही नहीं मरना किसे कहते हैं। पर सच बात यह है—हम बीस बरस—चालीस बरस—के नहीं होते हमारे जीने के दिन में से—बीस बरस—चालीस बरस—घट जाते हैं। जो हम को पचास बरस जीना है—तो अब हमारा दिन पूरा होने में—तीस बरस—और दस बरस—और रह जाते हैं। दूर तक सोचा जावे तो इस में हिचिकने में और मुंह के उदास बनाने की कोई बात है भी नहीं—मरना इतना डरावना नहीं है, जितना लोग समझते हैं। सच तो यों है

उसक मरने ही से जीने का आदर है—जो जग में मरना न होता—इस में लोग जीने से घबरा जाते। न तो खाना कपड़ा मिलता, न की म पहरने को ठौर मिलती, न रहने को घर अंटता, उस समै अंचले धरती पर कैसा लौट फेर होता—यह बात सोचने से भी जी के नी कांपता है। पर हम बहुत दूर की बात नहीं कहते हैं—हम उसी धान पात को दिखलाते हैं—जिस को सोच कर सभी मरने से जब यहरते हैं। धरती एक अनोखी ठौर है, इस पर जनम ले कर इन एक न एक बात में सभी उलझ जाते हैं। जिस ढंग का जिसे का जी होता है—प्यार करने के लिये वैसाही बहुत कुछ उस को यहां मिल जाता है। एक चितेरे को लो, देखो वह यहां के फल फूल पत्तियों, चमकते हुये सूरज, प्यारी किरनों वाले चांद, जगमगाते हुये तारों, सुथरे जलवाली झीलों, हरे भरे जंगलों, उजले धौले पहाड़ों, कलकल बहती हुई नदियों, चांद से मुखड़े वाली नवेलियों, बांके बांके बीरों, और दूसरी सहज ही जी लुभावने वाली छटाओं, को कितना प्यार करता है। इन को ले कर वह कैसी कैसी काट छांट करता है—कैसे कैसे

बेल बूटे बनाता है। दिन रात होती है, सूरज उगता और डूबता है, पर उस को इन कामों से छुट्टी नहीं। वह देखता सब कुछ है, सपै पर करता सब कुछ है, पर जैसा चाहिये उस का जी इधर नहीं रहता। वह अपनी धुन में डूबा हुआ, अपनी ही काट छांट में लगा रहता है। कितनी मूरतें बनाता है—कितने बन, परबत, नदी, झीलों, की छवि उतारता है। पर फिर भी सोचता है, अभी मुझ को बहुत कुछ करना है। अभी मैं ने यह मूरत नहीं बनाई, अभी उस मूरत में रंग भरना है, इस मूरत के गालों की लाली ठीक नहीं उतरी, भौंहें भी ठीक ठीक नहीं बनीं, आंखों के बनाने में तो मुझ से बहुत ही चूक हुई, तिरछी चितवन क्या यों ही दिखलाई जाती है!!! वह यही सब सोचता रहता है, इसी बीच काल उस को आ घेरता है—मन की बात मन ही में रह जाती है—वह सब कुछ छटपटाता है—पर करे तो क्या करे—विख की सी घूंट घोंट कर वह काल का सामना करता है—और बहुत सी चाहों को जी में रखे हुये इस धरती से उठ जाता है। इसी भांत कोई घर बार बालबच्चों में उलझा रहता है, कोई पूजा पाठ और जपतप में लगा रहता है, कोई राजकाज और धन धरती में फंसा होता है, कोई गाने बजाने और हंसी खेल में मतवाला होता है, पर सभी के ऊपर काल अचानक टूटता है, और सभी को बरबस इस धरती से उठा ले जाता है—सभी अपना काम अधूरा छोड़ता है—पछताता है पर कुछ कर नहीं सकता।

कामिनीमोहन की भी आज ठीक यही दसा है—वह खाते पीते सोते जागते भोले भाले मुखड़े का ध्यान करता, जहां रसीली बड़ी बड़ी आंखें देखता वहीं लट्टू होता, गोरे

गोरे हाथों में पतली पतली चूड़ियां उस को बावला बनातीं, सुरीले कंठ की बोल सुन कर वह अपनी देह तक भूल जाता, गदराया हुआ जोबन उस के कलेजे में पीर उठाता—उस की इन्हीं बातों ने उस को नई नई जवान इसतिरियों का रसिया बनाया। कितनी इसतिरियों का सत उस के हाथों खोया गया, कितनी इसतिरियां उस के हाथों मिट्टी में मिलीं, पर उस की चाह न घटी, आज कल वह देवहूती पर मर रहा था, बिना देवहूती चारों ओर उस की आंखों के सामने अंधेरा था। पर काल ने उस की इन बातों को न सोचा, आज वह काल के हाथों पड़ा है, काल को उस की तनक पीर नहीं है, आज वह उस को धरती से उठा लेना चाहता है।

कामिनीमोहन अपने घर की एक कोठरी में एक पलंग पर पड़ा हुआ आंखों से आंसू बहा रहा है। वहीं दस पांच जन और बैठे हुये हैं—दो चार जन उस की सम्हाल कर रहे हैं—गांव के पुराने बैद पास बैठे हुये देख भाल कर रहे हैं। पर उन के मुखड़े पर उदासी छाई हुई है—वह कामिनीमोहन की दसा घड़ी घड़ी बिगड़ते देख कर हाथ मल रहे हैं—पर उन से कुछ करते नहीं बनता। कामिनीमोहन पहले अचेत था, पर बैद ने दो एक बलवाली ऐसी औखधें खिलाई हैं, जिस से अब वह चेत में है। पर चेत में होने ही से क्या होता है—लहू सर से इतना निकल गया है—और चोट इतनी गहरी आई है—जिस से अब लोग उस की घड़ी गिन रहे हैं—कामिनीमोहन के पास जो दस पाँच जन बैठे हैं उन में कुछ साधू और कुछ घरबारियों के भेस में एक जन और बैठा है। इस का मुखड़ा भी उदास है, जी पर कुछ चोट सी लगी जान पड़ती है, आंखें भी थिर हैं, पर कभी कभी

बिजली की कौंध की भांत मुखड़े पर तेज भी झलक जाता है! साथ ही मुंह से एक ठंढी सांस निकल कर बाहर की पौन में मिल जाती है। इस ने कामिनीमोहन को अपनी ओर निरासा भरी डीठ से बार बार ताकते देख कर कहा, क्या आप मुझ को पहचानते हैं?

कामिनीमोहन। हां! पहचानता हूं! देवस्वरूप आप का नाम है। उस दिन आप देवहूती की बिपत में सहाय हुये थे, क्या आज मुझ को बिपद से उबारने के लिये आप यहां आये हैं?

देवस्वरूप की आंखों में पानी आया, उन्हों ने कहा, मेरे हाथों जो आप का कुछ भला हो सके तो मैं जी से उस को करना चाहता हूं, आप की दसा देख कर मुझ को बड़ा दुख है। पर क्या करूं मेरा कोई बस नहीं चलता। उस दिन देवहूती को बचाने के लिये जी पर खेल गया था, आज आप के लिये भी अपने को जोखों में डाल सकता हूं—पर कैसे आप का भला होगा—यह मुझ को बतलाया जाना चाहिये। मैं जितने जीव हैं सब को भला करना, सब को बिपत से उबारना, अपना धरम समझता हूं—आप का भला करने में क्यों हिचकूंगा।

कामिनीमोहन। आप बड़े लोग हैं जो ऐसा कहते हैं—सच तो यों है अब मैं किसी भांत नहीं बच सकता—मेरे दिन पूरे हो गये। पर आप किसी भांत यहां आ गये हैं, तो मैं आप से दो चार बातें पूछना चाहता हूं, क्या आप उन को बतला सकते हैं?

देवस्वरूप । मैं ने जो कुछ किया है—धरम के नाते किया है, धरम में खोट नहीं होती—आप पूछें मैं सब बातें सच सच कहूंगा ।

कामिनीमोहन ने इतना सुन कर, जो लोग कोठरी में बैठे थे वैद छोड़ उन सब लोगों से कहा—आप लोग थोड़ी देर के लिये बाहर जाइये। उन लोगों के बाहर चले जाने पर उस ने देवस्वरूप से कहा । पहले यह बतलाइये, उस दिन आप देवहूती के कोठे पर कैसे पहुंचे, क्या आप देवहूती के कोई हैं ? जो आप देवहूती के कोई नहीं हैं—तो आप ने मेरी भेद की बातों को कैसे जान लिया ?

देवस्वरूप । बड़ों ने कहा है पाप कभी नहीं छिपता, क्यों उन्हों ने ऐसा कहा है, यह बात थोड़ा सा बिचार करने पर अपने आप समझ में आती है । सच बात यह है—जिन पापों को हम बहुत छिपकर करते हैं—उन के भी देखने सुनने वाले मिल जाते हैं । एकही समै सब ओर न देखने वाली हमारी आंखें चूकती हैं—दूसरी ओर लगा हुआ हमारा कान पास की बात भी नहीं सुनता । पर हमारे कामों की ओर लगी हुई देखने वालों की आंखें—हमारी बहुतही धीरे कही गई बातों की ओर लगे हुए सुनने वालों के कान—अपने अपने औसर पर नहीं चूकते । बहुतही चुपचाप यह सब अपना काम करते हैं—और हमारी बहुत सी बातों को जान कर हमारी बहुत सी होनेवाली बुराइयों का हाथ बटाते हैं । पीछे इन्हीं देखने सुनने वालों से हमारे पापों का भंडा फूटता है । जिस दिन आप ने रात में मुझ को देवहूती के कोठे पर पाया, उसी दिन दोपहर को मैं देवहूती के घर के पास वाले पीपल के पेड़ के नीचे बैठा था । इस पीपल

के पेड़ के पास एक पक्का कूआं है—इसी कूएं पर मुझ को दो इसतिरियां बात करती दिखलाई पड़ीं। उन में एक बासमती थी, और दूसरी भगमानी। उन दोनो में बातचीत धीरे धीरे हो रही थी, पर मैं सब सुनता था। एक दो बार बासमती की डीठ मेरी ओर फिरी थी, पर उस ने मुझ को देख कर भी नहीं देखा। एक बार जब उस की डीठ मुझ पर पूरी पड़ी, तो वह कुछ चौंकी, पर उसी छन वह समझ गई मैं बटोही हूं। जो मैं गांव का होता तो उस को कुछ उलझन होती भी, पर बटोही समझ कर वह मेरी ओर से निश्चिंत हो गई। और जो बातें भगमानी से कहने को रह गई थीं, उन को भी उसी भांत धीरे धीरे उसने उस से कहा, पीछे दोनों वहां से चली गई। जितनी बातें बासमती और भगमानी में हुईं—उन को सुन कर मैं उस दिन होने वाली सब बातों को भली भांत जान गया, और उसी समै अपने मन में ठाना, जैसे हो एक भले घर की इसतिरी का सत बचाना चाहिये। यह सब सोचकर मैं छ घड़ी रात गये, देवहूती के घर के पिछवाड़े एक ठौर ओलती के नीचे आकर खड़ा हुआ। आप अपने दोनों साथियों के साथ ठीक मेरे पास से होकर निकले थे—पर आप ने मुझ को नहीं देखा। जिस खिड़की से होकर हम और आप ऊपर गये थे—वह खिड़की उस ठौर के बहुत पास थी। आप को दो और साथियों के साथ देखकर मैं घबराया, पर कुछ ही बेर में मेरी बिपत टल गई—जब आप के दोनों साथी आप का गहनों का डब्बा लेकर वहां से नौ दो ग्यारह हुये। उन दोनों के चले जाने पर मैं कोठे पर चढ़ा। कोठे पर जो कुछ हुआ, वह सब आप जानते हैं। मैं ने बात चीत के समै आप से कहा था, जहां वह

दोनों गये वहां तू भी जा, पर उस समै उन को भगा हुआ जानकर मैं ने आप को घबड़ा देने के लिये ऐसा कहा था, मेरा उस समै ऐसा कहने का कोई दूसरा अरथ न था।

कामिनीमोहन। एक बात तो हुई—दूसरी बात मुझ को यह पूछनी है। क्या इस गांव के बन में भी आप आ जा सकते हैं? क्योंकि कलह जब मैं बन में गया था, तो उस में कई बार मैं ने गाना होते सुना। यह गाना आपही के गले से होता जान पड़ता था। क्योंकि आप के गले को मैं भली भांत पहचानता हूं।

देवसरूप। उस दिन मैं ने जो कुछ देखा सुना, उस से मेरे जी में बहुत बड़ी उलझन पड़ गई। सब बातें जानने के लिये मेरा जी उकताने लगा। पर मुझ को कोई बात ऐसी न सूझी, जिस से मेरा काम निकल सके। इसलिये मैं गांव के बाहर धूनी रमा कर साधुओं के बेस में बैठा, यहां मुझ को तुम्हारी बहुत सी बातें जान पड़ीं। पर देवहूती पर तुम्हारा जी आया हुआ है—और तुम उस को फांसना चाहते हो, यह बातें मैं ने किसी से न सुनीं। हां तुम्हारी चाल चलन की जितनी बुराई सुनी गई, उतनाही पारबती वो देवहूती की चाल चलन को लोगों को सराहते सुना। लोगों ने तुम्हारी और बातों के साथ-तुम्हारे बन के अड्डे की चरचा भी मुझ से की। सभों ने मुझ से यही कहा, न तो उस में कोई जा सकता है और न वहां का भेद कोई जानता है, पर इतना सभी कहता, बन के सहारे कामिनी-मोहन बड़ा अनरथ करता है। यह सब सुन कर मैं ने अपने जी में यह दो बातें ठानीं। एक तो जैसे हो आप की चाल चलन ठीक की जावे—दूसरे उन का सारा भेद जान लिया

जावें। पहले मैं ने बन का भेद जानना चाहा—और दो दिन पीछे गांव से बन की ओर चला। बन का भेद जानने में मुझ को पूरा एक महीना लगा। मैं ने बन के सब भीलों को अपना चेला बनाया, और उन सबों ने बन का सारा भेद मुझ को बतला दिया। बन में मिट्टी के नीचे खंडहरों में से हो कर बहुत सी सुरंगें निकली हुई हैं—मैं ने उन भीलों के सहारे एक एक करके उन सब को छान डाला। जिस दिन मैं सब कुछ देख भाल कर गांव की ओर लौट रहा था, मैं ने दूर से आप को बन में आते देखा, और समझ गया—आप किसी बुरे काम के लिये ही बन में आ रहे हैं। मेरा दूसरा काम आप को पाप से बचाना था, इसलिये गाने के बहाने मैं ने उस बेले ऐसी सिख आप को दी, जिस को सुन कर आप पाप करने से हिचकें। पर दुख की बात है—उस दिन के मेरे किसी गीत ने काम नहीं किया, और आप अपनी बातों पर वैसेही जमे रहे। जब आप मुझ को पेड़ के नीचे खोज रहे थे, तो मैं वहीं मिट्टी के नीचे एक सुरंग में था। जब आप से और देवहूती से बात चीत उस खंडहर वाले घर में हुई, तब भी मैं इसी कोठरी के नीचे के एक सुरंग में खड़ा सब सुनता रहा, और यहीं से बाहर निकल कर आप की बात पूरी होने पर मैं ने अपना सब से पिछला गीत देवहूती को ढाढ़स बंधाने के लिये गाया था। आप कह सकते हैं तुम एक बटोही थे, तुम को इन बातों से क्या काम था, पर सच बात यह है, मैं ने जनम भर अपने लिये ऐसे ही कामों का करना ठीक किया है, मुझ को ऐसे कामों को छोड़ दूसरा काम नहीं है, और इसीलिये मैं ने जिस

दिन आप के गांव में पांव रक्खा, उसी दिन अपने को जोखों में डाल दिया था।

कामिनीमोहन ने एक ऊंची सांस भर कर कहा, आप कह सकते हैं पहली बेले मुझ को इन बातों से क्या काम था, पर सच बात यह है, मुझ को देवहूती की चाल चलन में खटका था, आप को इस भांत उस का सहाई होते देखकर ही मेरे जी में यह खटका हुआ था। मैं अपने जी को बहुत समझाता था, नहीं देवहूती की चाल चलन कभी बुरी नहीं है—पर यह न मानता। अब आप की बातों को सुन कर मेरा सब भरम दूर हुआ—अब मैं अपना काम कर के मरूंगा।

इतना कह कर कामिनीमोहन ने एक बात देवसरूप से कही—देवसरूप ने भी उस को अच्छा कहा। पीछे गांव के बड़े बड़े लोग बुलाये गये। सब लोगों के आ जाने पर एक काम कामिनीमोहन ने बहुत धीरज के साथ किया। पर ज्यों ही यह काम पूरा हुआ। कामिनीमोहन की सांस ऊपर को चलने लगी, उस की आंखें बिगड़ गईं, और रह रह कर वह चौंक उठने लगा। उस की यह गत देख कर देवसरूप ने कहा, कामिनीमोहन तुम रह रह कर इतना चौंकते क्यों हो? कामिनीमोहन की पलकें उठती न थीं—पर धीरे २ आंखें खोलीं और कहा, बड़ी डरावनी मूरतें सामने देख रहा हूं—क्या जमदूत इन्हीं का नाम है! मैं इन के डर से कांप रहा हूं। मुझ को जान पड़ता है, मुझ को मारने के लिये वह सब मेरी ओर लपक रहे हैं। ओहो! कैसे कैसे डरावने हथियार उन लोगों के हाथों में हैं। आप इन के हाथों से मुझ को बचाइये, क्या यह सब मुझ को नरक में ले जावेंगे? मैं इन्हीं सबों से डर कर चौंक उठता हूं। यह कहते कहते कामिनीमोहन की आंखें सदा मुंद गईं॥

देवस्वरूप को कामिनीमोहन की बातें सुन कर बड़े तेज को दुःख हुआ, उन्हों ने जी में सोचा, अभी कल्ह यह कह रहे हुये थे नरक सरग कहीं कुछ नहीं है, परमेसर भी एक धोखे की टट्टी है, और आज इन की यह गत है। सच है, मरने के समै बड़े पापी की भी आँखें खुलती हैं। जब तक बनेदिन होते हैं, मानुस संकट नहीं होता, तभी तक उस की सब सीटी पटाक रहती है। बिपत पड़ने पर उस का जी कभी ठिकाने नहीं रहता। पर यह माटी का पुतला इन बातों को पहले नहीं सोचता, दुख इतनाही है। इतना सोच कर देवस्वरूप ने कहा, कामिनीमोहन राम राम कहो, राम का नाम सब बिपतों को दूर करता है॥

कामिनीमोहन। बान लगाने से ही सब कुछ होता है—जैसी बान सदा की होती है—काम पड़ने पर वही बान काम में आती है। मैं ने आज तक राम का नाम जपने की बान नहीं डाली, इसलिये इस बेले भी मुझ से राम राम नहीं कहते बनता। मैं ने जो पाप किये हैं—वह एक एक करके मेरी आँखों के सामने नाच रहे हैं। मेरा जी बेचैन हो रहा है—अपने पापों का मुझ को क्या फल मिलेगा, यह सोच कर मेरा रोआं रोआं कलप रहा है, गले में कांटे पड़ रहे हैं, जीभ सूख रही है, तालू सख रहा है—मैं राम राम कहूं तो कैसे कहूं।

इतना कहते कहते कामिनीमोहन चिल्ला उठा, मुझ को बचाओ बचाओ, यह काले काले, डरावने, टेढ़े टेढ़े दांतवाले जमदूत मुझ को मारे डालते हैं। फिर कहा, अरे बाप! अरे बाप!! मरा! मरा!!! क्या ऐसा कोई माई का लाल नहीं है, जो मुझ को इन के हाथों से बचावे!!! आह! आह!! जी गया! जी गया!! मेरे रोयें रोयें में भाले क्यों चुभाये

[illegible]
में डाल[illegible] हैं! मेरी जीभ क्यों ऐंठी जाती है! मेरी बोटी बोटी
[illegible] काटी जाती है! मेरा कलेजा क्यों निकाला जाता है!
लोगो दौड़ो! लोगो दौड़ो!! अब तो नहीं सही जाती!!!

देवसरूप ने कामिनीमोहन के सर पर हाथ रख कर कहा, कामिनीमोहन राम राम कहो, तुमारी सब पीड़ा दूर होगी। कामिनीमोहन ने कहा, रा—म रा—म—फिर कहा, उहं! उहं!! रहो! रहो!! अरे मेरे गले में जलते जलते लोहे के छड़ क्यों डाले देते हो!!! अरे! अरे! यह क्या! यह क्या!! हाय बाप! हाय बाप!! मार डाला! मार डाला!!!

देवसरूप की आंखों से कामिनीमोहन की दसा देख कर आंसू चलने लगे—वह कामिनीमोहन से कुछ न कह कर आप उस की खाट पर बैठ गये—धीरे धीरे उस के कान में राम राम कहने लगे—पर कामिनीमोहन छटपटाता इतना था, जिस से वह भली भांत उस के कानों में राम राम भी नहीं कह सकते थे। अब कामिनीमोहन की सांस बड़े बेग से ऊपर को खिंच रही थी—गले में कफ आ गया था—सांस के आने जाने में बड़ी पीड़ा हो रही थी। आः! आः!! उहं! उहं!! करने छोड़, वह कुछ कह भी नहीं सकता था। गला घर्रे घर्र कर रहा था। इतने में उस की देह को एक झटका सा लगा—आंखों के कोये फट गये—और सड़ाके से सांस देह के बाहर हो गई। सारे घर में हाहाकार मच गया॥

---

## तेईसवीं पंखड़ी।

एक चूकता है—एक की बन आती है। एक मरता है—एक के भाग जागते हैं। एक गिरता है—एक उठता है। एक

बिगड़ता है—एक बनता है। एक ओर सूरज अपने तेज को खो कर पच्छिम ओर डूबता है—दूसरी ओर चांद हंसते हुये पूरब ओर आकास में निकलता है। फूल की प्यारी प्यारी जी लुभाने वाली पंखड़ियां एक ओर झड़ती हैं—दूसरी ओर अपने हरे रंग से जी को ठंढा करते हुये फल सर निकालते हैं। इधर पतझाड़ होती है—उधर नई नई कोंपलों से पौधे सजने लगते हैं। इधर रात की अंधियाली दूर होती है—उधर दिन का उंजियाला फैलने लगता है। जग का यही ढंग सदा से चला आया है। कामिनीमोहन मर गया, दो चार दिन गांव में उस की बड़ी चरचा रही, कोई उस के लिये आठ आठ आंसू रोता रहा, कोई उस पर गालियों की बौछार करता रहा, कोई उस को भला कहता रहा, कोई उस को बुरा बनाता रहा। जो उस के बैरी मीत कुछ न थे, वह उस के जवान मरने पर आंसू बहाते, पर जब उस की बुरी चालों को सुनते, नाक भौं सिकोड़ते, कहते—हाय! कामिनीमोहन! चार दिन के जीने पर तुम इतने आपे से बाहर हो गये थे, तुम को सोचना चाहिये था, मरने पीछे जग में जस और अपजस ही रह जाता है। दो चार दिन पीछे लोगों को यह सारी बातें भूल गईं। धीरे धीरे कामिनीमोहन की ठौर एक दूसरा जन लोगों के जी में घर करने लगा, गांव में जहां देखो वहां उसी की चरचा होती—यह हमारे देवसरूप थे। ज्यों ज्यों वह कामिनीमोहन का किरिया—करम बिधि के साथ कराने लगे, ज्यों ज्यों वह गांव के लोगों के साथ दया और प्यार से बरतने लगे, त्योंही त्यों लोगों का जी उन की ओर खिंचने लगा।

धीरे धीरे कामिनीमोहन का दसवां हुआ, फिर तेरहवीं हुई, देवसरूप ने कामिनीमोहन का सब काम पूरा पूरा कराया, किरिया-करम की कोई विध उठा न रक्खी। जब सब किरिया-करम हो चुका, तो एक दिन एक चौपाल में सारा गांव इकट्ठा हुआ, गांव का कोई मुखिया ऐसा न था, जो उस समै वहां न पहुंचा हो। जब सब लोग आ कर अपनी अपनी ठौरों बैठ चुके—देवसरूप उठ कर खड़े हुये, और कहा। कामिनीमोहन ने मरते समै अपने धन के लिये कुछ लिखा पढ़ी की है, और जो लोग उस समै वहां थे उन से कहा था, मेरा सब किरिया करम हो जाने पर एक दिन गांव के सब लोगों को इकट्ठा करना, और जो लिखावट आज मैं लिखता हूं उस को पढ़ कर सब को सुनाना, पीछे इस लिखावट में जैसा लिखा है वैसा करना। आज आप लोग उसी लिखावट को सुनाने के लिये यहां बुलाये गये हैं। आप लोगों के गांव के पांच बड़े मुखियाओं ने जिन को आप लोग यहां बैठे देख रहे हैं, उस लिखावट को मुझ को पढ़ने के लिये दी है—वह लिखावट यह मेरे हाथ में है। मैं अब इस को पढ़ता हूं—आप लोग इस को सुनें। इतना कह कर देवसरूप उस लिखावट को पढ़ने लगे—लिखावट यह थी।

"मैं कामिनीमोहन बेटा राधिका मोहन रहनेवाला बसंतपुर परगना हरगांव ( गोरखपुर ) का हूं—

"मेरे कोई लड़की लड़का नहीं है, जो संपत मेरे पास है, वह सब मेरे बाप की कमाई हुई है, इस में मेरे बंस के किसी दूसरे का कोई साझा नहीं है। मेरे मरने पर मेरा यह सारा धन मेरी इसतिरी फूलकुंअर का होगा, पर इतना धन

एक थोड़े बयस की इसतिरी के हाथ में छोड़ जाना मैं अच्छा नहीं समझता, इस लिये मरने के पहले मैं अपने धन के लिये कुछ लिखा पढ़ी करना चाहता हूं—

"किसी का सरपर न होना, और बहुत सा धन अचानक हाथ में आ जाना, सब अनरथों की जड़ है, मेरे बाप के मरने पर मेरी यही गत हुई थी—मेरे मरने पर मेरी इसतिरी की भी ठीक यही गत होगी। मेरा जनम बाम्हन के घर में हुआ है —मैं लिखा पढ़ा भी हूं— दस भलेमानस के साथ उठा बैठा भी हूं—समै का फेरफार भी देखा है। पर मैं ने क्या किया ? कोई बुरा करम मुझ से करने से छूटा ? जब मेरी यह गत हुई, तो सब भांत से कोरी एक इसतिरी ऐसी दसा में क्या करेगी—यह कह कर बतलाने का काम नहीं है। पर इन सब बातों को सोचकर इस बेले जो मैं कोई ढंग निकाल जाऊं—तो मैं समझता हूं सभी समझवाले इस बात को अच्छा समझेंगे—

" मेरे बाप ने बड़ी कठिनाई से इतनी संपत कमाई थी, एक एक पैसे के लिये उन्हों ने कितनों का रोंआं कलपाया था, छल कपट कर के कितनों का सरबस हरा था, पर इतनी बड़ी संपत में से एक पैसा उन के साथ न गया, मैं उन का प्यारा बेटा हूं, मैं भी आज इस को छोड़कर चला। फिर क्यों लोग दूसरों का रोआं कलपा कर धन इकट्ठा करते हैं, यह कुछ समझ में नहीं आता। क्या यह उन्हीं कलपे हुये लोगों के आह का फल नहीं है, जो आज इतनी बड़ी संपत का कोई भोगनेवाला नहीं रहा, जान पड़ता है जब तक किसी की चलती है—तब तक नहीं सूझता। आज मुझ को अपने बाप के लिये यह बातें सूझ रही हैं—पर कलह उन से

चढ़ चढ़ कर मैं बुरे बुरे करम गली गली करता था, उस घड़ी तो लोगों के समझाने पर भी मेरी आंख न खुली। मुझ को इस घड़ी इन पचड़ों से कुछ काम न था, पर एक तो इन बातों को दिखलाकर मैं इस ढंग से धन बटोरनेवाले की आंखें खोलता हूं—दूसरे जिन को अपनी संपत सौंपना चाहता हूं उन के कान भी खड़े किये देता हूं। मरते समै मरने वाले के मुंह की ऐसी बातें बहुत काम की होती हैं।—

"देवहूती कौन है? कहां रहती है? मैं यह बतलाना नहीं चाहता। आज कल हमारे गांव के सभी देवहूती को जानते हैं। पर मैं यह कहूंगा, देवहूती एक बहुत ही सीधी, सच्ची, सती, समझवाली, और भलेमानस इसतिरी है। मैं ने आज तक बहुत सी इसतिरियां बहुत से ढंग की देखीं—पर देवहूती ऐसी इसतिरी मुझ को देखने में नहीं आई। मेरे दिन बड़े खोटे थे—जो मेरा जी देवहूती पर आया, और अचरज नहीं है जो एक सती इसतिरी पर बुरी डीठ डालने से ही आज मैं भरी जवानी में इस भांत अचानक मर रहा हूं। मैं ने देवहूती को फांसने के लिये क्या नहीं किया—कैसी कैसी चाल नहीं चला—पर मेरी सब चालों में देवहूती के धरम की जैजैकार रही—और मैं सदा मुंह की खाता रहा। क्या इतना कहने पर भी देवहूती के सत के लिये मुझ को कुछ और कहना चाहिये—मैं समझता हूं अब कुछ कहने का काम नहीं है—पर इतना कहूंगा। जैसे गंगाजल खारा नहीं हो सकता, चांद की किरनें मैली नहीं हो सकती, सूरज पर अंधियाली नहीं दौड़ सकती—वैसे ही देवहूती के सत पर आजस का धब्बा नहीं लग सकता। मैं पहले देवहूती को प्यार की डीठ से देखता था, पर आज मैं उस को एक देवी

समझता हूं—जी से उस के आगे मत्था नवाता हूं- और जो कुछ साग पात मेरे पास है, उस को आदर के साथ उस के साम्हने रख कर उस की पूजा करना चाहता हूं। मैं बड़ा पापी हूं क्या जानें इस पूजा के फल से उस लोक में मेरा कुछ भला हो। दूसरे यह भी दिखलाना है-जो इसतिरी संकट के समै भी अपना धरम निबाहती हैं, उस लोक की कौन कहे उस को यहां ही सब कुछ मिलता है—

"मेरी इसतिरी फूलकुंवर कैसी है? मैं इस को क्या कहूं। पर मुझ ऐसे कुचाली पती से भी जो कभी उखड़ कर नहीं बोली—वह इसतिरी कैसी इसतिरी है—इस को समझने वाले आप समझ लें। हाय! आज उस के ऊपर कैसी बिपत टहती है! इस को नेक सोचने पर भी कलेजा फटता है। पर मैं उस को देवहूती के हाथ में सौंपता हूं-देवहूती से बढ़ कर मैं किसी को ऐसा नहीं देखता, 'जो फूलकुंवर का आंसू ठीक २ पोंछ सके-और उस को अपने धरम पर भी रक्खे। देवहूती के हाथों फूलकुंवर का अच्छा निबटेरा होगा-मेरे जी को इस की पूरी परतीत है-

"मेरे बंस के जो लोग हैं, भगवान की दया से वह सब अच्छे हैं-सब को दूध पूत है—धन.संपत का भी किसी को टोटा नहीं है। इसलिये इन लोगों के लिये मैं कुछ करना नहीं चाहता। पर मुझ से पांचवीं पीढ़ी में जो पंडित रामसरूप हैं उन के दिन आज कल पतले हैं। इसलिये आज मैं उन को नहीं भूल सकता—इस समै मैं उन के लिये भी कुछ कर जाना चाहता हूं—

"जो कुछ मैं ने अब तक कहा और लिखाया है, उस से मेरे सुध बुध का ठीक होना और मेरा सचेत रहना पाया

जाता है—इसलिये "जो कुछ मैं लिखता हूं सुधबुध ठीक होते और सचेत रहते लिखता हूं" मैं ऐसी बातें अपनी इस लिखावट में लिखना नहीं चाहता—

"मेरे पास बीस गांव हैं, इन में से मनोहरपुर गांव मैं ने पं० रामसरूप को दिया। इस गांव में बरस में बारह सौ रुपये बचते हैं—मैं समझता हूं इतने रुपये बरसौढ़ी मिलते रहने पर वह अपना दिन भली भांत बिता सकेंगे—

"अब उन्नीस गांव और रहे—इन उन्नीस गांव और दूसरी सारी संपत को मैं देवहूती और फूलकुंवर को देता हूं। उन्नीसों गावों पर देवहूती और फूलकुंवर दोनों का नाम चढ़ेगा, और दूसरी सारी संपत भी इन दोनों के साझे की समझी जावेगी। मेरी इसतिरी जैसी सीधी और भोली है, और देवहूती जैसी भलेमानस और समझवाली है, इस से मैं समझता हूं कोई संपत बांटनी न पड़ेगी। देवहूती अपनी मा और भाई के साथ आ कर मेरे घर में रहे, और फूलकुंवर और वह मिल कर सारी संपत की सम्हाल करें, मेरे जी की प्यारी चाह यही है। और जिस लिये मैं फूलकुंवर को देवहूती को सौंपे जाता हूं—वह बात भी तभी पूरी होगी। इन दोनों में से किसी एक के मरने पर सारी संपत दूसरे की समझी जावेगी। देवहूती का पती किसी साधू के साथ निकल गया है—वह कहां है कोई नहीं जानता। पर जो देवहूती का दिन पलटे और उस का खोया हुआ पती उस को फिर मिले, और भगवान उस को कोई बेटा देवे, तो देवहूती और फूलकुंवर दोनों के मरने पर सारी संपत उस की होगी। जो यह दिन भगवान न दिखलावें, तो दोनों के मरने पर सारी संपत मेरे बंस के लोग पावेंगे। यह दोनों इसतिरियां मेरी

संपत किसी भांत दूसरे को न लिख सकेंगी—जो लिखेंगी तो वह लिखना न लिखने ऐसा समझा जावेगा। देवहूतीं जी करने पर अपने भाई को ऐसे ही फूलकुंवर अपने भाई के छोटे लड़के को कोई गांव लिख सकती है—पर इस भांत की बचत बरस में चौबीस सौ से ऊपर की न होगी—

"मैं पंडित हरनाथ, पंडित रामसरूप, पंडित रामदेव, बाबू महेस सिंह और बाबू राजबंस लाल, और जो यहां रहें तो देवसरूप के हाथों में—जिन के सामने यह लिखावट लिखी गई है—अपनी सारी संपत की देख भाल सौंपता हूं। यह लोग मेरी संपत को बिगड़ने और बुरे ढंग से काम में आने से बचावेंगे—और देवहूती और फूलकुंअर को ऐसी सीख देंगे जिस से वह मेरी संपत को आज से अच्छे कामों में लगावें। इसतिरियों को अपने ऊपर छोड़ देना हमारे यहां अच्छा नहीं समझा जाता, इन के ऊपर किसी का दबाव भी होना चाहिये, इसलिये मुझ को इतना और करना पड़ा। मैं समझता हूं ऐसा करके मैं ने कोई चूक नहीं की है—

"मुझ को एक बात का दुख रह गया, मैं देवसरूप को अपनी संपत में से कुछ देना चाहता था पर उन्हों ने न लिया, मेरा बहुत कुछ बोझ होता, जो मेरी संपत में से वह कुछ थोड़ा भी लेते। इस लिखावट के लिखने में मुझ को उन से बहुत सहाय मिली है—इस के लिये मैं उन का निहोरा करता हूं—

"जहां तक मैं सोचता हूं अब मुझ को कुछ और नहीं लिखना है—इस लिये इस लिखावट को मैं पूरा करता हूं—

ह० कामिनीमोहन।"

देवसरूप पूरी लिखावट पढ़ कर बोले, आप लोगों को जो कुछ सुनाना था सुनाया गया। आप लोग इस लिखावट

को सुन कर पूछ सकते हैं, देवहूती तो सरजू में डूब कर मर गई ? फिर क्या कोई दूसरी देवहूती है, जिस को कामिनीमोहन ने अपनी संपत दी है ? मैं गांव के उन पांच बड़े बुढ़ियाओं के कहने से—जिन का नाम लिखावट पढ़ते समै लिया जा चुका है—आप लोगों का यह भरम दूर करना चाहता हूं। पर भरम दूर करने से पहले मैं आप लोगों से पूछता हूं—क्या आप लोग हरमोहन पांडे को जानते हैं ?

लोगों की जो बड़ी भीड़ वहां इकट्ठी थी, उन में से कुछ लोग बोल उठे, क्यों नहीं जानता हूं, वह देवहूती के बाप थे ? चार बरस हुआ एक दिन वह गांव के दक्खिन बन के पास एक जन को दिखलाई पड़े—फिर तब से उन का खोज न मिला। हम लोग जानते हैं, उन को कोई बन का जीव उठा ले गया, और अब वह इस धरती पर नहीं है ॥

जिस घड़ी लोगों के मुंह से यह बात निकली, उसी समै उस भीड़ में एक जन उठ कर खड़ा हुआ। इस जन को हम बन में देख चुके हैं। जब देवस्वरूप के साथ घर लौटने में देवहूती ने नाहीं की थी। उस बेले यही जन देवहूती के पास आया था। उस समै हम लोगों ने जिस बेस में इस जन को देखा था, इस बेले उस का वह बेस नहीं है। इस घड़ी इस के सर पर पगड़ी है, देह पर अंगा है, गले में दुपट्टा है, और उजली लम्बी धोती पांवों को छू रही है। पर दाढ़ी जैसी की तैसी थी, उस में कुछ लौट फेर न हुआ था। जब यह जन अपनी ठौर पर उठ कर खड़ा हुआ, देवस्वरूप ने कहा, क्या आप लोग इन को पहचानते हैं ? यह सुन कर सारी भीड़ कुछ घड़ी चुप रही, पीछे दो जन भीड़ में से उठकर खड़े हुये। और इन लोगों ने कहा, हां ! हम लोग पहचानते हैं, यही

हरमोहन पांड़े हैं ? इन दोनों की बातें सुनकर सारी भीड़ खड़बड़ा उठी, बारी बारी कर के बहुत से लोग उठ बैठे। सर ऊंचा नीचा कर के सभों ने देख भाल की, और कहा, ठीक है, यही हरमोहन पांड़े हैं। इस समै सारी भीड़ अचरज में आ गई थी, और जितने मुंह उतनी बातें होने लगने से, हौरा सा मच गया था, पर देवसरूप ने किसी भांत फिर सब को चुप किया, और कहा अब आप लोग जानिये, जो चार बरस के मरे हुये हरमोहन पांड़े जी सकते हैं, तो पन्द्रह तीन दिन की मरी देवहूती भी जी सकती है। सच बात यह है देवहूती भी मरी नहीं है, जीती है। यहां आप लोग हरमोहन पांड़े से पूछ कर अपना अपना भरम दूर करें। और इन के घर पर जाकर देखें, वहां आप लोगों को देवहूती जीती मिलेगी। देवसरूप इतना कह पाये थे, और हरमोहन पांड़े उन की बातों को ठीक बतलाही रहे थे, इसी बीच भीड़ फिर खड़बड़ा उठी, बहुत लोग अपनी अपनी ठौर छोड़कर चौपाल के नीचे उतरने लगे। कोई रोते चिल्लाते भी सुनाई पड़ा। सब लोग घबड़ा उठे बात क्या है! पर जो था चौपाल के नीचे ही उतरा जा रहा था, इस लिये कुछ ठीक न जान पड़ा क्या है। यह हलचल देखकर गांव के पांचों मुखिया और देवसरूप भी चौपाल से नीचे उतरे, और भीड़ चीर कर आगे बढ़े। तो देखा, एक खाट पर बासमती लहू में डूबी हुई पड़ी तड़प रही है, उस की देह में छुरी के सैकड़ों घाव लगे हुये हैं, और उस का बेटा उस की खाट के पास खड़ा रो चिल्ला रहा है। देवसरूप ने उस के बेटे की ओर देखकर कहा, यह क्या हुआ गंगाराम ?

गंगाराम। देखो महराज! गांव को सूना पा कर न जाने कौन आज मेरी मा को इस भांत छूरियों से घायल कर गया। मैं अभी चौपाल में से उठ कर घर गया, तो वहां इस को पड़े तड़पते पाया। यह बहुत पुकारने पर भी नहीं बोलती, न किसी का नाम बतलाती। इसी से आप लोगों को दिखाने के लिये मैं इस को यहां खाट पर अपने एक पड़ोसी के साथ उठा लाया हूं। बाबू आप लोग अब इस का निआव करें—दोहाई बाबू लोगों की।

जिस घड़ी गंगाराम बातें कर रहा था, बासमती सांस तोड़ रही थी, उस के घाव, उस की बुरी गत, और उस का तड़पना देख कर, सब के रोंगटे खड़े थे, ऐसा कोई अंग नहीं था जहां छूरी चुभाई नहीं गई थी। उस की यह दसा देख कर गांव के मुखियाओं ने कहा, इस को अभी थाने में ले जाओ! यह सुन कर गंगाराम ने ज्यों खाट उठाई, त्यों उसी में कहीं लिपटी एक लिखावट नीचे गिर पड़ी—लिखावट यह थी—

"बासमती ने कितनी भोली भाली इसतिरियों और कितने भले घरों को बिगाड़ा है। मेरा जी इसी से इस के ऊपर बहुत दिनों से जलता था, पर कामिनीमोहन का डर मुझ को कुछ करने न देता था। जिस दिन कामिनीमोहन मरे उसी दिन से मुझ को अपने जी की जलन बुझाने का बिचार था। पर औसर हाथ न आता था। आज औसर हाथ आने पर मैं अपने जी की जलन को बासमती के लहू से ठंढा करता हूं—और जो इसतिरियां कुटनपन करने में बड़ी चोख हैं, उन को बतलाता हूं, वह चेत रक्खें, मेरे ऐसा उन को भी कोई कभी मिल रहेगा। किसी को जी से मारना

और थाने के लोगों के हथकंडों का विचार न करके एक लिखावट भी पास रख जाना, एक नई बात है। पर लोगों की भलाई के लिये मैं ऐसा करता हूं—आगे मेरे भाग में जो बदा हो।

एक अपने जी पर खेलने वाला।"

लिखावट पढ़ जाने पर गंगाराम बासमती को ले कर थाने की ओर चला गया, पर जाने से पहले बासमती मर चुकी थी। जितने लोग वहां थे सब लोगों ने बड़े दुख से तड़प तड़प कर बासमती को मरते देखा था, इस लिये उसी की चरचा करते करते वह लोग भी अपने अपने घर आये। पर न जानें कैसा एक डर आज गांव के सब लोगों के जी में समा गया था॥

—०—

## चौबीसवीं पंखड़ी।

आज तक मर कर कोई नहीं लौटा, पर जिस को हम मरा समझते हैं, उस का जीते जागते रह कर फिर मिल जाना कोई नई बात नहीं है। ऐसे औसर पर जो हरख होता है—वह उस हरख से घट कर नहीं कहा जा सकता—जो एक मरे हुये जन के लौट आने पर मिल सकता है। पारबती बड़ी भागवाली है—आज दो बरस का खोया हुआ पती ही उस को नहीं मिला, उस की आंखों की पुतली वह देवहूती भी अचानक आ कर उस से गले मिली—जिस को वह डूब मरी समझ कर आठ आठ आंसू रोती थी। आज उस के हरख का पार नहीं है। कुछ घड़ी के लिये वह बावली बन गई, अपने देह तक की सुध भूल गई, संसार उस की आंखों

यों कुछ और हो गया, न उस से हंसते बनता था न रोते।
पर कुछ ही बेर में वह भाफ जो घुन बांध कर भीतर उठ
रही थी, बाहर निकल पड़ी, और वह फूट कर रोने लगी।
अब बहुत दिनों की जी में लगी दुखड़ों की काई झर झर
बहते हुये आंसुओं से धुल गई। और पारबती का जी कुछ
हलका हुआ, उस घड़ी वह और सब बातें भूल कर हरमोहन
से कहने लगी। क्या आप को मुझ को इस भांत छोड़ देना
चाहिये था—आप किस के हाथ मुझ को सौंप गये थे, जो
दो बरस तक मेरी सुध भी न ली। सब तो गया ही था,
मैं आप का ही मुंह देख कर जीती थी, फिर आप इतने
कठोर क्यों हुये? पर फिर भी मेरे भाग अच्छे हैं, जो आप
ने इतने दिनों पीछे भी चेता, और मेरे उजड़े हुये घर को
बसाया।

हरमोहन पांडे भी इस बेले चुपचाप आंखों से आंसू
बहा रहे थे, जब पारबती कह चुकी वह बोले। जिस होनहार
ने धन संपत बो गांव घर मुझ से छुड़ाया था, उसी ने तुम्हारी
ऐसी घरनी, देवहूती जैसी लड़की, और देवकिसोर जैसा
लड़का भी मुझ से छुड़ाया। मुझ को सब भांत का दुख तो
था ही, पर जमाई के किसी साधू के संग कहीं निकल जाने
की बात जब मैं ने सुनी, उस घड़ी मेरे दुख का पार न रहा,
मैं ने सोचा ऐसे घर से तो बन अच्छा है, और इसी धुन में
मैं बन में निकल गया। निकलने को तो मैं बन में निकल
गया, पर वहां मुझ को बहुत कुछ भुगतना पड़ा। महीनों मुझ
को बनफल खा कर और झरनों का पानी पी कर अपने
दिन बिताने पड़े। बात यों है—बन में निकल जाने पर जब
दो चार दिन पीछे जी ठिकाने हुआ, तो मेरे जी में कई बार

यह बात उठी—मैं घर लौट चलूं—मैं घर की ओर चला भी। पर जिस पथ से मैं वन में घुसा था, वहां पथ कुछ ऐसा भूल भुलइयां के ढंग का है, जिस ने मुझ को घर न लौटने दिया जाते समै मुझ को कहां जाना है, यह विचार तो था ही नहीं इसलिये नाक की सीध में मैं बन में घुसता चला गया, पर निकलते समै, मैं जिधर से निकलना चाहता था, कुछ चलने पर फिर वहीं आ जाता था, महीनों तक मैं नि बन से निकलने का जतन करता रहा, पर एक दिन भी मेरे मन की न हुई। उलटे लेने के देने पड़ गये। महीनों बनफल खाने, झरनों का पानी पीने, और धरती पर सोने से मैं रोगी हो गया, और मेरा चलना फिरना तक रुक गया। इन दिनों मैं एक पत्ते की झोपड़ी में जिस को मैं ने अपने हाथों बनाई थी—दिन रात पड़ा रहता था। और इतना दुबला हो गया था, जिस से किसी जंगली जीव का सामना होने पर किसी भांत अपने को बचा न सकता था।

पर मेरे दिन पूरे नहीं हुये थे, इसी लिये रोगी होने के थोड़े ही दिनों पीछे किसी ओर से घूमते घामते दो भील मेरे पास आये, इन दोनों ने मुझ को देखा, मेरा नाम धाम पूछा और चुपचाप मुझ को अपने घर उठा ले गये। मैं ने उन दोनों से घर पहुंचा देने के लिये बहुत कहा, भांत भांत की लालच दिखायी, पर उन्हों ने मेरी एक न सुनी. कहा, आप इतने घबराते क्यों हैं ? जब आप अच्छे हो जायेंगे, घर पहुंचा दिया जावेगा। मैं उन की बातें सुन कर चुप हो रहा कुछ डरा भी, पर अपने घर ला कर उन दोनों ने मेरी जितनी टहल की, मैं उस के लिये उन का जनम भर रिनी रहूंगा। मैं पांच छ महीने अच्छा नहीं हुआ, पर उन

दोनों ने एक दिन भी ऐसी टहल और सम्हाल करने से जी न चुराया। जब मैं भली भांत चंगा हुआ, उस समय मुझ को घर से निकले एक बरस हो चुके थे। बीच बीच में कई बार मैं ने उन सबों से घर पहुंचाने के लिये कहा, पर जब मैं घर की बात उठाता, तभी वह सब टाल टूल करते। क्यों वह टालटूल करते मैं पहले इस भेद को न समझता था, इस लिये मैं सोचता— इन सब का प्यार मेरे साथ बहुत हो गया है, इसी लिये यह सब मुझ को घर पहुंचाना नहीं चाहते। धीरे धीरे यह बात मेरे जी में जम गई, और मैं ने सोचा, अपने आप मुझ को जंगल से बाहर निकलने के लिये कोई जुगत करनी चाहिये। पर यह काम मैं इस भांत करना चाहता था, जिस में वह दोनों भील जान तक नहीं। क्योंकि सेवा टहल कर के उन्हों ने इस भांत मुझ को अपने हाथों में कर लिया था, जिस से मैं किसी भांत उन का जी तोड़ना अच्छा न समझता था॥

तुम कहोगी भीलों का और इतना ध्यान! पर इन भीलों के बरताव की बात मैं क्या कहूं। क्या बस्ती में बसने वालों में इतनी भलमनसाहत हो सकती है? कभी नहीं! छल कपट का वह सब नाम तक नहीं जानते, सीधे और सच्चे इतने हैं जितना होना चाहिये। हम लोग मुंह पर बातें बनाते हैं, बात चलने पर धरती आकास एक करते हैं, कभी कभी ऐसी चिकनी चुपड़ी सुनाते हैं, जिस से पाया जाता है हम से बढ़ कर भला कोई दूसरा हो नहीं सकता। पर भीतर की सड़ी गंध से जी भिन्ना जाता है—काम पड़ने पर ऐसा भेद फूटता है, जिस के कहते

हुये भी लाज लगती है। मुझ को बस्ती के लोगों से भली भांत काम पड़ चुका था, मैं बहुत से लोगों का रंग ढंग देख चुका था, इस लिये जंगल में पहुंचने पर जब भीलों से पाला पड़ा, तो मुझ को जान पड़ा, बस्ती के लोग इन भोले भाले भीलों से कितनी दूर हैं। कभी कभी मेरे जी में घर न पहुंचाने की बात खटकती थी, पर इस को भी मैं उन का प्यार ही समझ चुका था, चाहे मेरे साथ उन का यह प्यार न था, तब भी जिस लिये वह मुझ को घर न पहुंचाते थे, यह भी एक ऐसी बात थी, जिस से वह और अच्छे समझे जा सकते हैं। कामिनीमोहन की ओर से वह सब बन के रखवाले थे, कामिनीमोहन ने उन से कह रखा था, जो बन के भीतर गांव का कभी कोई पाया जावे तो उस को बिना मुझ से पूछे बाहर न निकलने देना, फिर वह क्यों उन की बातों पर न चलते? औसर पा कर उन सबों ने कामिनीमोहन से मेरे घर पहुंचा देने के लिये पूछा भी था, पर जान पड़ता है उन दिनों उस की डीठ देवहूती पर पड़ चुकी थी, इस लिये उस ने मुझ को जंगल में रख छोड़ने के लिये ही कहा। यह सब बातें कामिनीमोहन के मरने पर मुझ को भीलों ने बतलायीं थीं॥

जब बन में एक बरस बीत कर दूसरा लगा, और बाल बच्चों का नेह बहुत सताने लगा, तब मैं चुपचाप नित्त बन से निकल कर घर पहुंचने के लिये पथ ढूंढने लगा। पर मुझ ऐसे आलसी जीव के लिये बन में पथ ढूंढ लेना कठिन बात थी। जब बन में मैं पथ ढूंढने निकलता, और कहीं कुछ उलझन पड़ती, तभी मैं अपनी झोपड़ी में पलट आता, कहता अब कल्ह पथ ढूंढूंगा। पर इसी भांत कल्ह कल्ह करते दो बरस बीतने पर आये और मुझ को पथ न मिला॥

भाग से एक दिन देवसरूप से भेंट हुई। उन्हों ने मुझे देख कर साधू समझा, और कहा, आप का दरसन बड़े औसर पर हुआ, आज मैं एक सती इसतिरी का धरम बचाना चाहता हूं, पर मुझ को डर था वह मेरी परतीत करे न करे। पर आप को देख कर मैं सुखी हुआ, आप बड़े बूढ़े हैं, आप की परतीत करने में उस को कुछ आगा पीछा न होगा। आप मेरे साथ चलिये और एक धरम के काम में सहाय हूजिये। मैं उन की बातों को कुछ न समझ सका, पर धरम की दुहाई देते देख कर उन के साथ हो गया। वह मुझ को एक सुरंग से एक कोठरी में ले गये, ज्यों मैं कोठरी में पहुंचा एक ड्योढ़ी में से निकल कर देवहूती को कोठरी की ओर आते देखा। मैं ने देवहूती को देख कर पहचाना, और उन से कहा, यह तो मेरी लड़की है। यह यहां कैसे आई, आप सब बातें मुझ से खोल कर कहें। उन्हों ने मेरी बात सुन कर कहा, तब तो और अच्छा हुआ, पर आप इस घड़ी न कुछ पूछें पाछें और न कुछ बोलें—इस घर से बाहर निकल चलने पर सब बातें अपने आप, आप जान जावेंगे। जब हम तीनों सुरंग से बाहर निकले, तो देवसरूप मेरी झोपड़ी तक हम लोगों के साथ आये, पथ में बहुत सी बातें देवहूती की भलमनसाहत और कामिनीमोहन की चाल की उन्हों ने मुझ को सुनाईं, मैं ने भी अपना सारा दुखड़ा उन को सुनाया बीच बीच में देवहूती फूट फूट कर रोती थी। जब मैं अपनी झोपड़ी में पहुंचा, वह कहने लगे—इस समै मैं एक काम से हंसनगर जाता हूं, आप देवहूती के साथ कुछ दिन और बन में रहिये, थोड़े ही दिनों पीछे मैं आप को देवहूती के साथ आप के घर पहुंचा दूंगा। गांव के पंचों के कहने से आज

वही देवहूती के साथ मुझ को घर लिवा लाये हैं, पथ में गांव की बड़ी चौपाल में मुझ को थोड़ी देर के लिये ठहरा लिया था, चौपाल से थोड़ी दूर पर देवहूती की पालकी भी उतरवाई थी, सोचा था, क्या जाने कुछ काम पड़े। पर मुझ को जीता देख कर गांववालों ने देवहूती के लिये कुछ पूंछ पाछ न की। इसी बीच वासमती का पचड़ा फैल गया। मैं ने देखा अब यहां रहना ठीक नहीं, इस लिये देवहूती के साथ घर चला आया। तुम ने जो कुछ कहा सब ठीक है, पर होनहार किसी के हाथ नहीं, जो जो नाच उस ने नचाया, वह सब नाचना पड़ा। अब भी जो नाच वह नचावेगी, नाचना पड़ेगा। पर इस बुढ़ौती में एक बार हमारी तुमारी भेंट और बदी थी, वह हुई, आगे की राम जानें॥

पारवती चुपचाप हरमोहन पांडे की बातें सुनती रही, कभी रोती, कभी ऊंची सांसें लेती, और कभी चुपचाप उन के मुंह की ओर ताकती रही। जब हरमोहन पांडे चुप हुये वह बोली, भगवान ने जैसा मेरा दिन फेरा, सब का दिन फिरे। आप को और देवहूती को इन दो बरसों में जैसी बिपत झेलनी पड़ी, राम किसी बैरी को भी ऐसी बिपत में न डाले। मैं ने जब भूल कर भी कभी किसी का बुरा नहीं किया, तो मेरा बुरा कैसे होता। कामिनीमोहन के मरने पर बासमती मेरे पास दो तीन दिन आई थी, उस से देवहूती की सब बातें जान पड़ी थीं, मैं उस से मिलने की आस में ही दिन गिन रही थी, पर अचानक आप का भी दरसन करा कर भगवान ने मेरे किस जनम के पुन्न का फल आज मुझ को दिया है—मैं नहीं कह सकती॥

पारबती इन्हीं बातों को कह रही थी, इसी बीच गांव की बहुत सी इसतिरियां देवहूती से मिलने के लिये वहां आईं। इसतिरियों को आई देख कर हरमोहन वहां से उठ कर एक दूसरे घर में चले गये। पारबती देवहूती को इसतिरियों के पास छोड़ कर पहले हरमोहन के पास गई। उन का हाथ मुंह धुलाया, उन को कुछ खाने को दिया, पीछे इसतिरियों के पास लौट आई। पारबती, देवहूती, और आई हुई इसतिरियों में क्या बातचीत हुई, मैं इस को लिखना नहीं चाहता। ऐसे औसर पर जैसी बातें हुआ करती हैं, उन को आप लोग अपने आप समझ लें॥

---

## पचीसवीं पंखड़ी।

जब तक हम को पेट भर खाने के लिये नहीं मिलता, हम दो मूठी अन्न के लिये तरसते रहते हैं, उन दिनों हम को यही सोच रहता है, कैसे पेट भर खाने को मिलेगा, कहां से दो मूठी अन्न लावें, जिस से पापी पेट की आग बुझे। पर पेट भर खाना मिलने पर, दो मूठी अन्न का ठिकाना हो जाने पर, हमारा जी पहले का सा नहीं रह जाता। इस घड़ी हम सोचते हैं, कुछ कमाना चाहिये, हमारे पहनने के कपड़े कैसे फटे फुटे और बुरे हैं, भलेमानसों को मुंह तक नहीं दिखाया जाता, कहां से कुछ मिले, जो भाये दिन पत रहे। जो भगवान ने दया की, इस दुखड़े से भी छुट्टी मिली, तो जी में आता है, घर चारो ओर से गिरा पड़ा है, बरसात में घर की छतें चलनी बन जाती हैं, धूप के दिनों लूओं लपट

के थपेड़ों से जी पर आबनती है, जैसे हो घर बनवाना चाहिये। जो भाग ने साथ दिया, पैसे हाथ चढ़ गये, तो घर बनते भी बेर नहीं होती। पर क्या हमारी चाहें यहीं आ कर ठिकाने लगती हैं? नहीं, घर बना तो हाथी घोड़ा चाहिये, धन धरती चाहिये, रुपये चाहिये। सच बात यह है चाह कभी पूरी नहीं होती, जिस के लिये आज हम बेकल हैं, जो वह कलह मिल गया, तो परसों दूसरी ही उधेड़ बुन में हम लगते हैं, और उस के लिये हाथ पांव मारते हैं जो अब हमारे पास नहीं है। पारबती आज कल दिन रात हरमोहन पांड़े वो देवहूती के लिये रोती कलपती थी, सोते जागते उस को इन्हीं का धेआन था, राम राम कर के उस के दुख की रात बीती, सुख के सूरज ने मुंह दिखलाया, हरमोहन पांडे और देवहूती ने आ कर उस के अंधेरे घर में उजाला किया, वह दो एक दिन इस सुख में भूली रही। पर दोही दिन पीछे उसका जी फिर दुखी रहने लगा, वह देवहूती का रूप जोबन देखती, उस के धन बिभौ की बात बिचारती, और सोचती, क्या कोई दिन वह भी होगा, जिस दिन देवहूती का उजड़ा हुआ घर बसेगा? फिर सोचती, यह भी बावलापन है! जो साधू हो गया, वह घर बारी कैसे होगा!!! फिर जी में बात आती, तो भगवान ने इस को इतना रूप क्यों दिया! इतना धन बिभौ क्यों दिया!!! जो सदा उस को जलना ही है, तो यह रूप वो धन बिभौ किस काम आवेगा। क्या देवहूती को बिपत से उबारनेवाले देवसरूप उस की इस बिपत से रच्छा करने का भी कोई उपाय सोचेंगे! देवसरूप का नाम मुंह पर आते ही वह चौंक उठी देवसरूप को एक दिन अचानक पारबती ने देख लिया था;

देखतेही उस के जी का भाव न जानें कैसा हो गया था, इस घड़ी भी उस के जी का भाव वैसा ही हुआ, वह मन ही मन सोचने लगी, देवसरूप का मुखड़ा देवहुती के पती से इतना क्यों मिलता है? देवहूती का पती भी साधू हो गया है, देवसरूप भी साधू है! फिर क्या देवसरूप ही तो देवहूती का पती नहीं है? इन बातों को सोच कर पारवती बड़े गोरख धंधे में पड़ी। वह जानना चाहती थी देवसरूप कौन है? कहां का है? क्यों दूसरों की भलाई के लिये दिन रात उतारू रहता है? क्यों उस ने देवहूती के साथ इतनी भलाइयां कीं? पर बहुत कुछ पूंछ पाछ करने पर भी वह इन बातों को न जान सकी। इसी बीच एक दिन पारवती ने सुना, कल्ह देवसरूप बंसनगर से चले जावेंगे, उन को कई तीरथों में जाना है, इसी लिये वह उतावली कर रहे हैं। पारवती ने गांव से चले जाने के पहले एक दिन अपने यहां उन का नेवता करना चाहा—और यह बात हरमोहन पांड़े से कही। उन्हों ने पारवती की बात मानी, और नेवता देकर एक दिन देवसरूप को अपने यहां बुलाया, जब वह खा पी चुके तो घर से मिली हुई एक बैठक में उन दोनों जनों में इस भांत बात चीत होने लगी॥

हरमोहन। आप ने हम लोगों के साथ जितनी भलाइयां की हैं, उस का हम लोग कहां तक निहोरा करें—बिना किसी अरथ के इस भांत दूसरों की भलाई करते, आप से पहले मैं ने किसी दूसरे को नहीं देखा। आप अब बंसनगर छोड़ कर आज कल में जाना चाहते हैं, इस से हम लोगों का जी मल रहा है, आंखों से आंसू निकल रहे हैं। क्या आप फिर दरसन दे कर हमलोगों को किरतारथ करेंगे? आप जैसे साधुओं

का दरसन करने ही से हम जैसे घरबारियों का भला होता है।

देवसरूप। एक के विपत में फंसने पर दूसरे का उस के बचाने के लिये उतारू हो जाना, हम सब लोगों का सब से बड़ा धरम है। मैं ने वही किया है, इस में आप के निहोरा मानने की कोई बात नहीं है। यह आप का बड़प्पन है जो इस बहाने आप मुझ को सराहते हैं। और जो प्यार आप लोगों का मेरे साथ है, वह आप लोगों की दया है, मुझ में कोई गुन ऐसा नहीं है, जिस के लिये आप लोग मुझ को इतना चाहें। यह सच है, मैं आजकल में बंसनगर छोडूंगा, पर कुछ दिनों पीछे आप लोगों का दरसन करने की फिर चाह है। मेरा जनम बाम्हन के घर में हुआ है, एक तो यों ही बाम्हनों और साधुओं का वेस बहुत मिलता जुलता होता है—दूसरे इधर दो तीन बरस मैं साधुओं के साथ रहा भी हूं। इस से मेरा वेस कुछ साधुओं का सा देख कर आप मुझ को साधू समझ रहे हैं, पर सच बात यह है, मैं साधू नहीं हूं—साधू क्या साधुओं के पांव की धूल भी नहीं हूं॥

हरमोहन। आप की बातें ठीक ठीक मेरी समझ में नहीं आती हैं, क्या आप साधू नहीं हैं? घरबारी हैं?

देवसरूप। हां! घरबारी ही समझिये, जब मैं साधू बनने जोग अभी नहीं हूं तो अपने को घरबारी कहने में क्यों हिचकूंगा। साधू होना टेढ़ी खीर है, बड़ा कठिन काम है। सर पर जटा बढ़ाये, भभूत रमाये, गेरुआ पहने, हाथ में तूंबा और चिमटा लिये, आप कितनों को देखते हैं, पर क्या वह सभी साधू हैं? नहीं वह सभी साधू नहीं हैं। बेस उन का साधुओं का सा देख लीजिये, पर गुन किसी में पाइयेगा!

कोई पेट के लिये भभूत रमाता है, कोई चार पैसा कमाने के लिये जटा बढ़ाता है, कोई लोगों से पुजाने के लिये गेरुआ पहनता है, और कोई घर के लोगों से लड़ कर बिगड़ खड़ा होता है, और झूठ मूठ साधुओं का वेस बनाये फिरता है। इन सब लोगों से निराले कुछ ऐसे लोग होते हैं—जो न तो कुछ काम कर सकते—न किसी काम में जी लगाते, जिस काम को वह करना चाहते हैं—आलस से वही काम उन के लिये पहाड़ होता है—फिर उन का दिन कटे तो कैसे कटे! वह सब छोड़ छाड़ कर साधू बनने का ढपर निकालते हैं, और इसी बहाने किसी भांत अपना दिन काटते हैं। जब तक इन लोगों के तन ढाकने और पेट भरने ही तक मिलता है, तब तक कहने सुनने को यह लोग कुछ भले होते भी हैं, पर जो कहीं कुछ रुपया पैसा हाथ चढ़ गया, कुछ धन धरती मिल गई, तो अनरथ होता है, जो काम बिगड़े से बिगड़ा घरबारी नहीं कर सकता, उन कामों को यह झूठा साधू करता है। और जितनी बुराई देस और देस के लोगों की इन लोगों के हाथों होती है, दूसरों के हाथ कभी नहीं हो सकती—इस से जवान साधू तो और अनरथ करते हैं! अभी भली भांत मूछ भी नहीं आई है—अठारह बीस बरस का वय है—जवानी ऊपर फिसली जाती है—अकड़ तकड़ देह में भरी हुई है—मन में सभी ढंग की चाहें हैं—एक चाह ने भी पूरा होने का औसर नहीं पाया—इसी बीच साधू बनने की धुन समाई। साधू बने, भभूत रमाया, जटा बढ़ाया, गेरुआ पहना, पर इस साधू बनने से क्या हुआ, जब तक मन हाथ न आया, और जी की चाहें न मिटीं। हां! इतना होगा भोले भाले लोग उन को साधू महातमा समझ कर उन से

किसी बात की झिझक न रक्खेंगे, और वह मनमाना देस की और देस के लोगों की बुराई करते रहेंगे। किसी पोथी में इस भांत साधू होना नहीं लिखा है, कहीं ऐसे साधुओं की बड़ाई नहीं की गई है। आज कल साधू होना भेड़ियाधसान हो गया है—जिस को देखो वही साधू बना फिरता है, पर इस भांत साधू होने से साधू न होना ही अच्छा है।

मैं यह नहीं कहता सभी साधू ऐसे हैं, जितने साधू देखने में आते हैं, सभी बुरे और खोटे हैं। पर यह कहूंगा जो भली भांत पढ़ा लिखा नहीं है, जिस के साधू होने का समै नहीं आया है, जो यह नहीं जानता साधू किस लिये हुआ जाता है, जिस ने यह नहीं समझा है, साधू का बेस बनाने के पहले साधू का गुन होना चाहिये, उस को साधू बन जग को धोखे में डालना है। साधू का बेस देखकर हमारा आप का उस का आदर मान न करना, एक ऐसी बात है, जिस से कभी किसी अच्छे साधू का मान न करने का दोख भी हम को आप को लग सकता है। इसी से हमलोगों में जो साधू के बेस में देखने में आते हैं, उन सब का आदर और मान करने की चाल है। पर यह हमारा और आप का करतब है, ऐसे झूठे बेस बनाने वाले के लिये यह और लाज की बात है। जितनी बातें मैं ऊपर कह आया हूं, उससे आप ने समझा होगा, मुझ में ऐसे गुन अब तक नहीं है, जिस से मैं साधू हो सकूं, और इसी लिये मैं ने आप से कहा है, मैं साधुओं के पांव की धूल भी नहीं हूं। हां! साधू होने के लिये जतन कर रहा हूं—आप बड़ों की दया से जो मेरा जतन पूरा हुआ, मेरा मन ठीक हो गया, और चाहें मिट गईं, तो समै आने पर मैं साधू होने की चाह रखता हूं। इस समै साधू कह कर आप मुझ को न लजवावें।

हरमोहन। आप बहुत बड़े लोग हैं जो ऐसी बातें कहते हैं, मैं आप की बातों को काट कर यह न कहूंगा—आप से बढ़कर कौन साधू हो सकता है। पर यह कहूंगा, हमलोगों का बड़ा भाग है, जो आप फिर दरसन देने के लिये इस गांव में आने की चाह रखते हैं। जो कभी कभी आकर आप दरसन दे जाया करेंगे, तो हमलोगों का बहुत कुछ भला होगा। इस घड़ी हम आप से अपनी एक और भलाई की आस रखते हैं। आप जानते हैं, दो बरस हुआ, देवहूती का पती किसी साधू के साथ कहीं निकल गया। आप कितने तीरथों, नगरों, और गावों में जाते हैं, ऐसा संजोग हो सकता है, जो आप के साथ उस की भेंट होवे, आप का जी इधर होने से ऐसा होने में और सुभीता होगा। जो भगवान यह दिन दिखावें, और आप के साथ किसी दिन उस की भेंट हो जावे, तो आप उस को घर फेर लाने के लिये जतन करेंगे। जिस भांत देवहूती को आप ने कितनी बिपतों से बचाया है, उसी भांत देवहूती को आप इस बिपत से भी बचावें। हमलोगों की बहुत गिड़गिड़ाहट के साथ आप से यही बिनती है।

देवसरूप। आप के बिना कहे उसी दिन से मेरे जी में यह बात बैठी हुई है, जिस दिन यह बात मैं ने जानी। मैं जहां तक हो सकेगा देवहूती के पती के ढूंढने में न चूकूंगा, पर आप दया कर के उन का रूप रंग क्या कुछ बतला सकते हैं?

हरमोहन। उस का रूप रंग आप से बहुत मिलता है—जब मैं ने जंगल में पहले पहल आप को देखा, उस का रूप रंग मेरी आंखों के सामने फिर गया था, जब मैं आप को

देखता हूं—तभी उस के मुखड़े की सूरत होती है, आप की उनहार उस से बहुत मिलती है।

देवसरूप यह सुन कर कुछ घड़ी चुप रहे—एक एक कर के कई बार हरमोहन के मुखड़े पर डीठ डालते रहे—फिर बोले। आप का नाम हरमोहन पांड़े छोड़ कुछ और है? क्या देवहूती का कोई दूसरा नाम भी है?

हरमोहन। मेरा नाम तो हरमोहन पांड़े ही है—पर मुझ को लोग कहते मोहन पांड़े हैं। इसी भांत देवहूती का भी कोई दूसरा नाम नहीं है—हां! प्यार से लोग उस को पियारी पुकारा करते। क्यों! आप ने यह क्यों पूछा?

देवसरूप कुछ इधर उधर कर के बोले। पियारी तो मर गई न?

देवसरूप को इधर उधर करते देखकर हरमोहन पांड़े ने एक गहरी डीठ उन के ऊपर डाली, इस समै उन के मुखड़े पर एक रंग आता, और एक जाता था, जी में अनोखा उलट फेर हो रहा था। पर उन्हों ने सम्हल कर कहा, नहीं वह मरी नहीं, अब तक जीती है। क्या देवहूती के मरने की बात आप जानते हैं?

देवसरूप ने धीरज के साथ कहा, हां! मैं ने सुना कुछ ऐसा ही था, पर आप की बात भी सच हो सकती है। किसी बड़े, रोग में बेसुध हो जाने पर बहुत लोगों के लिये ऐसी बातें फैल जाती हैं।

हरमोहन। ठीक ऐसा ही देवहूती के लिये भी हुआ है, जिस दिन यहां यह बात फैली, उस के थोड़े ही दिनों पीछे, मैं ने उस के पती के किसी साधू के साथ निकल जाने की बात सुनी। जान पड़ता है अपनी इसतिरी को मरा समझ

करती, उस ने ऐसा किया है। जो हो, पर आप यह बतलावें, आप इन बातों को कैसे जानते हैं? क्या आप रामनगर के रहनेवाले हैं?

एक जन सच्चे जी से तीरथ जाने के लिये सजधज कर खड़ा है। कैसे वहां जाकर देवताओं की सेवा पूजा कर के अपना जनम सफल करेगा! कैसे साधू महातमाओं का दरसन कर के अपने को बड़भागी बनावेगा!! वह इन्हीं उमंगों फूला नहीं समाता है। इसी बीच अचानक उस ने एक ऐसी बात सुनी, जिस से उस को तीरथ जाने का विचार छोड़ना पड़ा, सारी उमंगें उस की धूल में मिल गई, और मुखड़े पर [illegible] सा भरी गहरी उदासी झलकने लगी। ठीक यही दसा ह[illegible]हन की बातें सुन कर देवसरूप की हुई। मुखड़े का चम[illegible]ता हुआ चटकीला रंग फीका पड़ गया, आंखों की जोत कुछ मैली हो गई, और अचानक वह कुछ घबरा से गये, पर देखते ही देखते यह सब बातें दूर हुईं, धीरज मुखड़े पर खेलने लगा, और उन्हों ने कुछ चौंकते चौंकते कहा, हां! मैं रामनगर का ही रहने वाला हूं।

हरमोहन पांडे ने कुछ उकताहट के साथ कहा, आप के बाप का नाम?

देवसरूप ने वैसा ही धीरज के साथ कहा, पंडित गोविन्दसरूप!

अब की बार हरमोहन का कलेजा धक से हो गया, उन्हों ने लड़खड़ाती जीभ से कहा, और आप का नाम? फिर कहा क्या देवसरूप ही आप का नाम है?

देवसरूप बोलनाही चाहते थे, इतने में लाल पगड़ी वाले, थाने के दो मुचंडे, अचानक बैठक में घुस पड़े, और डांट कर

बोले, तुम लोग बासमती को मरवा कर यहीं बैठे अट कौसल कर रहे हो ! उठो ! अभी उठो ! ! देखो आज कैसी गाढ़ी छनती है। हरमोहन की नानी तो थाने वालों को देखते ही मर गई थी, इस पर उन्हों ने जो डांट बतलाई, उस से उस के रहे सहे औसान भी जाते रहे । पर देवसरूप ने बिना किसी घबराहट के कहा, देखो ऊधम करने का काम नहीं है, जहां तुम लोग कहो हम लोग चल सकते हैं । देवसरूप का रंग ढंग और धीरज देखकर फिर वह दोनों कुछ न बोले, और जिधर से आये थे, देवसरूप और हरमोहन को लेकर चुपचाप उसी ओर चले गये ।

—०—

## छब्बीसवीं पंखड़ी ।

बासमती के मारे जाने पीछे दो चार दिन गांव में बड़ी हलचल रही, थाने के लोगों ने आ कर कितनों को पकड़ा, मारने वाले को ढूंढ निकालने के लिये कोई बात उठा न रक्खी, पर बासमती से गांव वालों का जी बहुत ही जला हुआ था, इस से लाख सर मारने पर भी थाने के लोग अपनी सी न कर सके, अन्त को उन लोगों को हार माननी पड़ी, और दो चार दिन पीछे गांव में फिर चहल पहल हुई । आज बंसनगर की निराली छटा है, फूल पत्तियों से सज कर वह दूसरा सरग बन गया है । घर घर दुआरों पर बंदन वारें बंधी हैं, केले के खंभ गड़े हैं, और जल से भरे कलसे रखे हैं । इसतिरियां मीठे सुरों में गा रही हैं, पुरुख जहां तहां खड़े हंस बोल रहे हैं, आपस में चुहलें कर रहे हैं, और

लड़के किलक रहे हैं, उछल कूद रहे हैं, तालियां बजा रहे हैं, और गांव की छटा देखते हुये झुंड के झुंड इधर उधर घूम रहे हैं। देखो यह साम्हने का मंदिर कैसा सजा हुआ है, फूल पत्तियों से, केले के खंभों से, वंदनवारों से, वह कैसा अनूठा और सुहावना बन गया है, उस के साम्हने एक मंडप में बाजा कैसे मीठे सुरों में बज रहा है। इन साम्हने उछलते खेलते आते हुये लड़कों की ओर देखो उन की धुन बाजों की धुन के साथ कैसी लग रही है! वह बाजों के मीठे सुर पर कैसा उमग रहे हैं! मंदिर के ठीक बीच में एक बहुत ही ऊंचा झंडा गड़ा हुआ है, इस झंडे के इधर उधर दो छोटे झंडे और हैं, धीरे बहने वाली बयार इन झंडों के फरहरों को ले कर खेल रही है, हमारा जी भी उन में उलझा हुआ है। उन के लाल फरहरों पर उजले-कपड़े से बने अक्षरों में कुछ लिखा है, हम उस को पढ़ना चाहते हैं, अच्छा देखो हम ने उस को पढ़ लिया—जो सब से बड़ा और ऊंचा झंडा है; वह आकास से बातें करते हुये कह रहा है "धरम की सदा जय" उस के पास का एक झंडा ललकार रहा है "अंत भले का भला और अंत बुरे का बुरा" और दूसरा! धीरे धीरे अपने फरहरे को उड़ाता है, और बतलाता है— "सांच को आंच नहीं"। इस मंदिर के पास ही एक घर है, घर के दुआरे पर बहुत से लोग इकट्ठे हैं, इस घर को हम लोग कई बार देख चुके हैं, यह हरमोहन पांडे का घर है, आओ देखें यहां क्या हो रहा है।

देखो साम्हने एक लम्बी चौड़ी चांदनी तनी हुई है, चांदनी के नीचे चौकियों पर और इन चौकियों के नीचे धरती पर सुंदर बिछावन बिछा हुआ है। एक एक, दो दो,

चार चार, दस दस, कर के लोग आ रहे हैं, और ढब से बिछावन पर बैठते जाते हैं। बिछावन ऊपर नीचे लग भग भर गया है, कितने ही लोग आस पास खड़े भी हैं, पर फिर भी भीड़ पर भीड़ चली आती है—और लोग टूटे पड़ते हैं। धीरे धीरे हरमोहन पांडे के घर के पास की धरती लोगों से खचा खच भर गई, कहीं तिल धरने को ठौर न रही, पर इतनी भीड़ होने पर भी ऊधम नहीं था, सब लोग चुप चाप किसी की बाट देख रहे थे, पान बंट रहा था, पंखे झले जा रहे थे, और हरमोहन पांडे अपने दस बीस साथियों के साथ इन सब लोगों की आवभगत में लगे हुये थे।

अब हम घर के भीतर भी चल कर देखना चाहते हैं, वहां क्या होता है। हम लोगों में भलेमानसों के घर में जाने की चाल नहीं है, जिस भलेमानस के घर में लोग बे रोक टोक आते जाते हैं, न उसी को कोई भला समझता, और न वही भला गिना जाता, जो ऐसा करता है। पर आप आइये हमारे साथ चले आइये, घबराइये नहीं, हम लोग सब ठौर बे रोक टोक आ जा सकते हैं, और अपने साथ औरों को भी ले जा सकते हैं, इस से न घर वाले को ही कोई बुरा कहता, न हमहीं लोगों को कोई बुरा बनाता। जब यह चाल है, तो वह चाल भले ही न हो, हम को और आप को हिचकने की कोई काम नहीं! आइये, चले आइये, देखिये कैसा निराला समा है। आप ने कभी खिला हुआ कंवल देखा है! और जो देखा है तो ऐसे बहुत से कंवल जिस तालाब में खिले हों, क्या ऐसे किसी तालाब की छटा की सुरत आप को है!! आप ने कभी हंसते हुये पूरे चांद की सोभा देखी है! और जो देखी है तो ऐसे

सैकड़ों चांदों से सजे हुये आकास की छवि को आपने अपने मन में कभी आंका है !! हरे भरे पत्तों की आड़ में डाल पर बैठ कर कोयल को आपने कभी कूकते सुना है ! और जो सुना है तो कितने ही पेड़ों की झुरमुट में ऐसी कईएक कोयलों के बोलने की निकाई का ध्यान आप ने कभी किया है ! ! जो सुरत नहीं है, मन में कभी नहीं आंका है, और ध्यान नहीं किया है, तो उस की सुरत कीजिये ! उस छवि को मन में आंकिये ! और उस निकाई का ध्यान कीजिये । और फिर हरमोहन पांडे के घर की छटा को उस से मिलाइये । आज हरमोहन पांडे के घर में सैकड़ों पूरे चांद एक साथ निकले हैं, अनगिनत कंवल फूले हुये हैं, और रसीले कंठ से कितनी ही कोयलें बोल रही हैं । इस पर भांत भांत और रंग रंग के कपड़ों की फबन, गोटे पट्ठे की चमक दमक, घुंघुरुओं की झनकार, और रंग दिखला रही हैं । एक ठौर धधकती जवानी की बहुत सी छबीलियां बैठी हैं, चांद रस बरसा रहा है, कोयल बोल रही है, कंवल फूले हुये हैं, और निराली गंध में बसी हुई बयार धीरे धीरे चल रही है । वहीं देवहूती भी बैठी हुई घर में उंजाला कर रही है—आज उस के मुखड़े पर निराला जोबन है ! अनूठी छटा है ! और अनोखा आनंद है ! आज उस के गहनों कपड़ों की छवि देखे ही बन आती है । पास बैठी हुई छबीलियां उस को छेड़ रही हैं, और कभी कभी इन सबों का वह ठहाका लगता है, जिस से सारा घर गूंजता है । हम यहां ठहरना नहीं चाहते, इन छबीलियों में हमारा क्या काम ! पर एक बात जी में रही जाती है, देवहूती का आज यह ठाट क्यों !

इस दूसरी ठौर को देखो, यहां देवहूती की मा पारवती

बैठी हुई है, पासही उसी के बय की सैकड़ों इसतिरियां हटी हुई हैं। भांत भांत की बातें चल रही हैं, पर ओर छोर किसी का नहीं मिलता, जितने मुंह उतनी बातें सुनी जा रही हैं। कोई कुछ कहती है, तो दूसरी अपने मन से दस बातें और गढ़ कर उस में मिला देती है, न जानें कहां की छान बीन हो रही है। पारबती क्या कह रही है, जी करता है उसे सुनें, पर पास की इसतिरियों ने ऐसा गड़बड़ मचा रखा है, जिस से कुछ सुना नहीं जाता। जाने दो इस पचड़े को, चलो बाहर ही चलें, देखें अब वहां क्या हो रहा है।

देखो अभी यहां वैसाही जमघटा है, लोग अभी तक उसी भांत चुप चाप किसी की बाट देख रहे हैं—पर अब कोई आया ही चाहता है, क्योंकि लोगों में कुछ खलबली सी पड़ रही है। अच्छा आओ हमलोग भी यहीं ठहरें, देखें किस की अवाई है!

मंदिर के मंडप में जो बाजा बज रहा था, धीरे धीरे वह धूम से बजने लगा, जय और बधाई की धुन से सारी दिसायें गूंज उठीं, साथ ही गांव के पांच सात भलेमानसों के साथ धीरे धीरे हमारे जाने पहचाने देवसरूप ने उस जमघट के बीच पांव रखा। देवसरूप देखने में वैसेही धीरे पूरे जान पड़ते थे, उन के मुखड़े का भाव वैसाही था, धीरज उसी भांत उस पर खेल रहा था, और जैसा गंभीर वह पहले रहता था अब भी था। वह सब से जथाजोग मिलते जुलते चांदनी के भीतर आये, और उस के ठीक बीच में एक ठौर बैठ गये।

जब देवसरूप बैठ गये, उन के मौसेरे ससुर नंदकुमार, अपनी ठौर से उठे, और सब की ओर देखकर कहने लगे—

"आज आप लोगों को बड़े आनंद के साथ मैं यह बतलाता हूं—देवसरूप ही देवहूती के वह खोये हुये पती हैं—जिन के लिये हमलोगों का एक एक दिन एक एक बरस हो रहा था। मैं यह जानता हूं मेरे इस बात के बतलाने के पहले ही सारा गांव यह बात जान गया है, क्योंकि जो सारा गांव पहले ही इस बात को न जान गया होता, तो आज गांव में यह धूमधाम न होती। पर सब के साम्हने यह बात छोड़ मुझ को और दो चार बातें कहनी हैं, इसीलिये आप लोगों के साम्हने कुछ कहने के लिये मैं खड़ा हुआ हूं। कई बार देखादेखी होने पर भी देवसरूप ने हरमोहन पांड़े को वो हरमोहन पांड़े ने देवसरूप को तब तक क्यों नहीं पहचाना, जब तक न्योते के दिन उन लोगों में बातचीत न हुई—यह संका अब तक लोगों को बनी हुई है। यह संका ठीक है—पर आप लोगों को जानना चाहिये-तिलक के दिन से ब्याह के दिनों तक एक दिन भी इन दोनों जनों में देखादेखी नहीं हुई थी, और इसी लिये भेंट होने पर भी यह लोग एक दूसरे को न पहचान सके। तिलक चढ़ाने पुरोहितों के साथ मैं गया था, और ब्याह के दिनों पांडे जी अचानक कठिन रोग में फंस गये थे, इसी से देखादेखी न हो सकी थी। देवहूती ब्याह में बहुत छोटी थी, इसी से न उस को देवसरूप पहचान सके, और न देवसरूप को वह पहचान सकी। देवसरूप को पहचाना तो देवहूती की मा ने पहचाना, और वह पहचान भी सकती थीं, और उन्हीं के पहचानने से ही हम लोगों को आज का यह दिन देखने में आया। आप लोग कहेंगे आज तक तुम कहां सोते थे, पर यह भी दिनों का फेर ही था, जो मैं ने भी उसी दिन देवसरूप को देखा,

जिस दिन यह बात धीरे धीरे सब लोगों में फैल गई थी। देवसरूप को लड़कपन में लोग देऊ कहते थे, उन के इस लड़कपन के नाम ने लोगों को और धोखे में डाला। अब मैं समझता हूं आप लोग सब बात भली भांत समझ गये होंगे"।

इतना कह कर पंडित नंदकुमार अपनी ठौर पर बैठ गये। उस घड़ी जय और बधाई की वह धूम थी, जो किसी भांत नहीं लिखी जा सकती। जिस घड़ी यह धूम हो रही थी, एक ऐसा उंजाला चांदनी के भीतर छा गया, मानों बिजली कौंध गई—साथ ही—

"धरम का बेड़ा पार"

इस धुन से सारी दिसा गूंज उठी।

—०—

## सताईसवीं पंखड़ी।

आज दस बरस पीछे हम फिर बंसनगर में चलते हैं। पौ फट रहा है, दिसायें उजली हो रही हैं, और आकास के तारे एक एक कर के डूब रहे हैं। सूरज अभी नहीं निकला है, पर लाली चारों ओर दिसाओं में फैल गई है। कहीं कहीं पेड़ों के नीचे अभी भी गहरी अंधियाली है—पर अंधेरा धीरे धीरे दूर हो रहा है। चिड़ियां बोल रही हैं, कौवे कांव कांव कर रहे हैं, फूल खिल रहे हैं, और सरजू नदी बयार के ठंढे झोकों से ठंढी हो कर धीरे धीरे बह रही है। इसी सरजू के एक पक्के घाट पर एक जन बैठा हुआ पूजा कर रहा है, उस के माथे में चंदन लगा है, उस की दोनों आंखें अधखुली हैं, और मुखड़ा तेज से चमक रहा है। वह ऐसा एक

चित्त हो कर पूजा कर रहा है, और इस भांत सच्चे जी से भगवान के सुमिरन में लगा हुआ है, जिस को देख कर बड़े पापी का जी भी पसीज जाता है। हम जानना चाहते हैं, यह कौन है ? यह और कोई नहीं हमारे जान पहचान वाले देवसरूप हैं। सूरज निकलते निकलते उन्हों ने अपनी पूजा पूरी की, और सरजू के तीर से उठ कर घर की ओर चले—एक टहलू जो देखने में बड़ा भलामानस जान पड़ता था—पीछे पीछे साथ था।

हम कुछ घड़ी के लिये देवसरूप का साथ छोड़ना चाहते हैं—और देखना चाहते हैं गांव की आज कल क्या दसा है। बंसनगर गांव पहले ही हरा भरा था, पर आजकल वह और चढ़ बढ़ गया था। गांव में जो धनी थे, उन की चरचा ही क्या है—आजकल दीन दुखियों की दसा भी सुधर गई थी। देवसरूप ने कामिनीमोहन का बहुत सा धन पाकर अपने ठाट बाट में नहीं लगाया, जो ढंग उन का पहले था, अब भी था। देवहूती भी उन्हीं के दिखाये पथ पर चलती थी, लाखों रुपये की संपत पाकर उस ने अच्छे अच्छे गहने नहीं गढ़ाये, अपने लिये ऊंचे ऊंचे पक्के घर नहीं बनवाये। देवसरूप ने उस को समझाया, कामिनीमोहन के धन के हम कौन ! जो अपने पसीने की कमाई नहीं, उस को अपने काम में लगाना अच्छा नहीं ! तब वह धन जिस से बहुतों का भला हो सकता है, हम लोग अपने काम में क्यों लावें, चाहें बढ़ाने ही से बढ़ती हैं, फिर पहले ही उन को बढ़ने का औसर क्यों दिया जावे, देवसरूप ने गांवों के दीन दुखियों की दसा देखी थी, कितने ही अभागिनी रांड़ इसतिरियों के दुख पर कई बार आंसू बहाया था, उन

को यह सब बातें भूली नहीं थीं। देस जिन बातों से दिन दिन गिर रहा था, वह बातें भी दिन रात उन की आंखों के सामने फिरा करतीं, इस लिये उन्हों ने कामिनीमोहन का बहुत सा धन पाकर उस को अच्छे कामों में लगाया, आज उन के किये हुये अच्छे कामों से ही बंसनगर का ढंग निराला हो गया था। देवसरूप का साथ छोड़ कर जो हम आगे बढ़े, वों एक बहुत ही लम्बा चौड़ा और ऊंचा घर साम्हने दिखलाई पड़ा, इस घर के फाटक पर लिखा हुआ था।

कामिनीमोहन की धरमसाला

—————

आप आकर रहें यहां पर आज।
भाग ऐसे कहां हमारे हैं॥

—————

हम ने इस धरमसाले के भीतर पैठ कर देखा, इस में बटोहियों के सुख के लिये सब कुछ किया गया था। यहां बटोहियों को ठहरायाही नहीं जाता था, उन को दो दिन तक खाना भी मिलता था। और जो इस के कामकाजी थे, वह कितने भले और अच्छे थे, यह मुझ से बतलाया भी नहीं जा सकता। मैं उन की आवभगत का ढंग देखकर मोह गया, उन की मीठी बातों का रस चख कर जी ऊबताही न था। मैं इस घर को भली भांत देखकर बाहर आया, बाहर आते ही इस घर से थोड़ी ही दूर पर बहुत ही लंबा चौड़ा और कई खंडों में बटा हुआ एक दूसरा घर मुझ को दिखलाई पड़ा, इस घर के फाटक पर लिखा हुआ था—

कामिनीमोहन का बनाया हुआ
बिना मा बाप के लड़कों का घर

है सहारा जिसे नहीं, उस पर।
कौन आंसू नहीं बहावेगा ?

इस घर में जब मैं गया, देवसरूप के जी में कितनी दया है, यह बात मुझ को भली भांत जान पड़ी। यहां सैकड़ों लड़के और लड़कियां मुझ को दिखलाई पड़ीं। इन लड़के और लड़कियों के मा बाप नहीं थे, और न दूसरा कोई इन को सहारा देनेवाला था, इस लिये देवसरूप और देवहूती ने अपनी दया का हाथ इन के सर पर रक्खा था। गांव में जब हम घुसने लगे थे, हमारे कान में यह भनक पड़ी थी—

जिस के मा बाप नहीं उन के मा और बाप देवसरूप और देवहूती हैं—इस घर में आकर हम ने यह बात आंखों देखी। जितने लड़के और लड़कियां यहां थीं, सब ऐसे कपड़ों में थीं, और उन का मुखड़ा ऐसा हरा भरा था, जैसा बड़े सुख में पले लड़कों का भी नहीं देखा जाता। इन लड़कों को यहां लिखना पढ़ना और दूसरे भांत भांत के काम भी सिखलाये जाते थे, जिस से सयाने होने पर अपना पेट वह आप भर सकें। सब से बड़ी बात यह थी—ऐसे लड़कों की खोज के लिये देवसरूप ने पचीसों ऐसे लोग रखे थे, जो देस देस में घूम कर यही काम किया करते थे। मेरा जी इस घर को देखकर भर आया, और मैं सोचने लगा। हाय! न जानें कितने लड़के इस भांत सहारा न पाकर इस धरती से उठ

जाते होंगे, न जानें कितने अपना सब से अच्छा हिन्दू धरम छोड़ कर दूसरे धरमों में चले जाते होंगे, पर हमारे देस में देवसरूप ऐसे कितने लोग हैं। हम सैकड़ों रुपये मिट्टी में मिला देते हैं, पर ऐसे कामों में एक पैसा भी हम से नहीं उठाया जाता, क्या इस से भी बढ़कर कोई बात जी को दुखाने वाली है! इन बातों को सोचते सोचते मेरी आंखों में आंसू आने लगे, मैं ने उन को बड़ी कठिनाई से रोका, योंही एक तीसरे घर पर डीठ पड़ी, इस घर के फाटक पर लिखा हुआ था—

कामिनीमोहन की पाठसाला

---

जिस ने कुछ भी नहीं पढ़ा लिखा।
खो दिया हाथ का रतन उस ने॥

---

मैं ने इस घर में जाकर देखा, गांव की सब जात के लड़के इस में पढ़ रहे थे, और देस काल के विचार से यहां सभी ढंग की पढ़ाई होती थी—साथही इस के जिस का जो निज का काम था—वह काम भी उस को यहां सिखलाया जाता था। इस घर में भी बहुत से खंड थे, एक एक खंड में एक एक बात सिखलाई वो पढ़ाई जाती थी। बाम्हनों को और ऐसे लड़कों को जिन का कोई सहारा न था, यहां खाना कपड़ा भी मिलता था। जिस खंड में बाम्हन के लड़कों को बेद पढ़ाया जाता था, उस खंड में जाने पर न जानें कितनी पुरानी बातें जी में घूमने लगीं। पंडितों का सहज बेस, सीधी चाल चाल, और बेदों का सुर से पढ़ा जाना, बड़े

पापी के जी में भी धरम का बीज बोते थे। हम को यहां से हटना कठिन हो गया, पर किसी भांत यहां से निकले, और ज्यों आगे बढ़े, वों एक और लम्बा चौड़ा घर साम्हने दिखलाई पड़ा, इस घर के फाटक पर लिखा था—

> कामिनीमोहन के नाम पर
> इस घर में सदावरत बंटता है
>
> ———
>
> मत कभी पेटजलों को भूको।
> भूख की पीर बुरी होती है॥
>
> ———

गांव में जो दीनदुखी हट्टे कट्टे और काम करने जोग थे, उन को रुपया अन्न और गाय बैल देकर देवसरूप ने कई एक कामों में लगा रखा था। पर जो लूले, लंगड़े, अंधे, रोगी, और अपाहिज थे, उन सब को यहां नित्त कोरा अन्न मिलता था। दूसरे गांवों के भी ऐसे लोग जो सदावरत बंटने के बेले यहां आते थे—फेरे नहीं जाते थे। उन सबों की आवभगत भी यहां वैसी ही होती थी, जैसी गांववालों की। हम यहां से और आगे बढ़े, कुछ दूर जाकर एक बहुत ही सुथरा और अच्छा घर दिखलाई पड़ा—इस घर के फाटक पर लिखा था—

> कामिनीमोहन का बनाया हुआ
> रोगियों के औखध कराने का घर
>
> ———
>
> हम उन्हें भूला समझते हैं बहुत।
> रोगियों पर जो दया करते नहीं॥
>
> ———

इस घर में गांवहीं के नहीं दूसरे गांवों के भी बहुत से रोगी औखध कराने के लिये आते थे, उन सब की देखभाल और सम्हाल यहां बहुत ही जी लगा कर की जाती थी, रोगियों के ठहरने और रहने के लिये अलग अलग बहुत से अच्छे अच्छे घर थे—यहां उन को सब भांत का खाना भी मिलता था। जो यहां ठहरना नहीं चाहते थे, उन को औखध ही दी जाती थी। जो निरे कंगाल और भूखे रहते, उन को कपड़े भी मिलते थे। जो यहां पका पकाया खाना चाहते, उन के लिये बाम्हन रखे हुये थे—जो कोरा अन्न मांगते थे, उन को कोरा अन्नही मिलता था—रोगियों की टहल के लिये कई एक टहलू भी थे। अब तक यह सब देखते भालते हम सरजू के तीर से थोड़ाही आगे बढ़े थे—पर अब यहां से और आगे बढ़ कर हम गांव में घुसे। गांव में घुसने पर हम को एक घर भी उजड़ा हुआ न मिला, पहले गांव में पचासों खंडहर थे, पर आजकल वह सब बस गये थे। गांव में जिस को देखो वही सुखी, और वही काम में लगा हुआ दिखलाता। बीच गांव में पहुंचने पर हम को कामिनीमोहन का घर दिखलाई दिया, साथ ही बहुत सी बातों की एक साथ सुरत हुई, इस घर के फाटक पर पहले जैसे आठ पहर पहरा पड़ा करता था, आज भी पड़ता था। पर हम पहरेवालों से कह सुनकर किसी भांत फाटक के भीतर गये, इस घर में दो खंड था, एक पुरखों का, दूसरा इसतिरियों का, जो खंड पुरखों का था उस में हम को बहुत से लोग काम करते दिखलाई पड़े—यह सब कामकाजी थे, और जो बहुत से अच्छे अच्छे कामदेवसरूप ने खोले थे, उन सब की लिखा पढ़ी, देखभाल, और इन का लेखा इन लोगों के हाथ में

था। मैं यहां से हटा और दूसरे खंड पर पहुंचा, यहां बड़ा कड़ा पहरा था, इस खंड के फाटक पर लिखा हुआ था—

> अभागिनी फूलकुंवर ने अपना
> यह प्यारा घर अपनी रांड़
> बहनों की भेंट किया
>
> ——
>
> दुख उस का सहा नहीं जाता।
> हाय! जिस का रहा सुहाग नहीं॥
>
> ——

हम इस खंड में जाने नहीं पाये, पर पूछने पर हम को सब बातें जान पड़ीं। इस घर में गांव की ऐसी रांड़ इसतिरियां काम करती थीं, जो भले घर की थीं, और जिन का कहीं सहारा नहीं था। उन को यहां सिलाई, बेलबूटा काढ़ना, सूत का काम, और इसी ढंग के बहुत से और काम सिखलाये जाते थे, और उन से बहुत थोड़ा काम लेकर, उन के खाने पीने और कपड़ों का ब्योंत लगाया जाता था। पासही लड़कियों की एक छोटी पाठसाला भी थी, इस के फाटक पर लिखा हुआ था—

> फूलकुंवर की लड़कियों
> की पाठसाला
>
> ——
>
> वह लड़का भला न क्यों होगा।
> मा जिस की पढ़ी लिखी होगी॥
>
> ——

हम यहां से हटकर कामिनीमोहन की फुलवारी के फाटक पर पहुंचे, अब यह फुलवारी सब की संपत थी, देवसरूप ने इस को सारे गांव के लोगों को दे दिया था, इस के फाटक पर लिखा हुआ था—

चौतुका

यह चुप चाप कौन कहता है।
क्यों छवि देख कर अटकते हैं।
दो दिन भी न फूल रहता है।
पर कांटे सदा खटकते हैं॥

कामिनीमोहन।

इस फाटक को भी छोड़ कर हम आगे बढ़े, अब हम को देवसरूप का घर देखना था, जाते जाते हम को हरमोहन पांडे का घर मिला, और इसी घर की दाहिनी ओर देवसरूप का घर दिखलाई पड़ा, इस घर को देवसरूप ने अपने रुपये से बनवाया था, और आजकल वह देवहूती के साथ इसी में रहते थे। देवसरूप के पास बाप दादे की इतनी संपत थी, जिस से वह अपना दिन भली भांत बिता सकते थे, इस लिये कामिनीमोहन की संपत में से वह अपने लिये कभी एक पैसा नहीं लेते थे, और अपने लिये जो कुछ करते थे, वह अपने बाप दादे की संपत से ही करते थे। इस घर के दुआरे पर एक बहुत बड़ी बैठक थी, इसी बैठक में देवसरूप बैठे हुये थे, हम उस के भीतर गये। नित्त छ बजे दिन से ग्यारह बजे दिन तक देवसरूप अपने खोले सारे कामों की जांच पड़ताल और देखभाल करते थे, इस

के पीछे वह खाने पीने में लगते थे, अब बारह बजा ही चाहता था, इस लिये देवसरूप भी रोटी खाकर बैठक में आ गये थे। एक पांच बरस का लड़का उन से तोतली बातें कर रहा था, वह भी उस को खेला रहे थे, इसी बीच बारह बजा, और बैठक में एक कामकाजी आकर एक ओर बैठ गया, कुछ पीछे उजले कपड़ों में एक भलेमानस दिखलाई पड़े— देवसरूप ने उन को आदर से बैठाला, उन की कुसल छेम पूछी, उन से मीठी मीठी बातें कीं, टहलते टहलते पास जाकर उन के अनजान में सब की आंखें बचाते हुये उन के एक कपड़े के कोने में कुछ बांधा, और फिर अपनी ठौर आकर बैठ गये। यह अभी बाहर गये थे, इसी बीच किसी की चीठी लिये एक जन और वहां आया, और वह चीठी देवसरूप को दी, देवसरूप ने उस को खोलकर पढ़ा, उस में लिखा था—

" तुम बिन नाथ सुने कौन मेरी "

आप का

जगमोहन "

देवसरूप पढ़ते ही सब समझ गये, और उस पर लिखा, " पांच फूल आप की भेंट किये जाते हैं " और पांच रुपये उस जन को दे कर वहां से चलता किया। बैठक में बैठे हुये कामकाजी ने चुप चाप लेखे के चिट्ठे पर लिखा—

नंदकुमार लाल ५

जगमोहन मिसिर ५)

एक बजे से चार बजे तक मेरे देखते देखते कितने लोग आये, किसी ने अपनी लड़की का ब्याह बतलाया, किसी ने आंसू बहाया, किसी ने कोई और ही बहाना किया, और

देवसरूप ने भी कुछ न कुछ सभी को दिया। यह जितने थे सब ऐसे थे, जिन का दिन कभी बहुत अच्छा था, पर अब पतला पड़ गया था, फिर भी भरम किसी भांत बना था, देवसरूप ने उन के इस बने बनाये भरम को बिगाड़ना अच्छा नहीं समझा, और इसी लिये एक यह ढंग भी उन्हों ने निकाल रखा था, उन्हों ने अपने साम्हने एक चौकठा लटका रक्खा था, उस में लिखा हुआ था—

> देखिये बिगड़े नहीं उन का भरम।
> मरते हैं पर मांग जो सकते नहीं ॥

इस ढंग की इसतिरियों के लिये, ठीक ऐसाही ढंग देवहूती का था, और इसी लिये गांव में घर घर इन लोगों की जैजैकार होती थी। जो कुछ पढ़ना लिखना होता, देवसरूप इसी बेले पढ़ते लिखते भी थे, और पढ़ते पढ़ते जो कोई काम ऐसा जान पड़ता, जिस में हाथ बँटाना वह अच्छा समझते, तो उस में भी वह कुछ न कुछ देते थे। आज उन्हों ने दो कामों में कुछ दिया, उन्हों ने एक ठौर पढ़ा, बिजनौर में एक मंदिर गिर रहा है, उस को फिर से ठीक करने के लिये पांच सौ रुपये चाहियें—देवसरूप ने यहां सौ रुपये भेजे। दूसरी ठौर उन्हों ने पढ़ा, बिहार में कुछ लोग अपनी देस भाखा की बढ़ती के लिये जतन कर रहे हैं, पर रुपये के टोटे से ठीक ठीक काम नहीं चल सकता—देवसरूप ने यहां दो सौ रुपये भेजे। इसी भांत वह और और कामों में भी समै समै पर कुछ कुछ भेजा करते थे ॥

चार बजे देवसरूप अपनी बैठक से अपने दो चार साथियों के संग निकले, और टहलते हुये गांव के पूरब

ओर सरजू के तीर पर जा पहुंचे, हम भी साथ थे। यहां एक फुलवारी उन्हों ने बनवाई थी, इस फुलवारी के चारों ओर ईंट की पक्की भीत थी, और भांत भांत के बेल बूटे और फल फूल के पेड़ों से इस की निराली छटा थी, फुलवारी के ठीक बीच में एक छोटा सा पक्का तालाब था, जिस में बहुत ही सुथरा जल भरा हुआ था। देवसरूप टहलते टहलते इसी तालाब के पास आये, और वहीं एक सुथरी ठौर देख कर बैठ गये। इस तालाब के पास एक बहुत ही सुंदर मंदिर था, इस मंदिर के दुआरे पर सोने के अच्छरों में खुदा हुआ एक पत्थर लगा था, जिस में यह लिखा था—

फूलदेवी का मंदिर

जो भरी हो भले गुनों हीं से।
कौन देवी उसे न समझेगा॥

देवी कौन है? वही, जिस में अच्छे गुन हों, मैं समझता हूं फूलकुंवर ऐसी अच्छे गुनवाली इसतिरी कोई होगी। उन की दया और भलमनसाहत की बड़ाई कहां तक करें, पर कामिनीमोहन ऐसे पती पर भी उन का इतना सच्चा प्यार था, जो उन के मरने के एक महीने के भीतर ही उन्हों ने भी यह लोक छोड़ा। कौन ऐसा कलेजा है जो इन बातों को जान कर भी न पसीजेगा! हमलोग उसी फूलदेवी का यह मंदिर बनाकर अपने को धन्न समझते हैं, और सच्चे जी से उन का और उन के पती का उस लोक में भला चाहते हैं॥

देवसरूप और देवहूती

पत्थर पढ़कर मुझ को मंदिर देखने की बड़ी चाह हुई, मैं हाथ पांव धोकर और कुछ फूल लेकर मंदिर के भीतर गया। वहां जाकर देवी की मूरत देखने पीछे मेरी जो गत हुई, मैं उस को किसी भांत नहीं बतला सकता। बहुत मोल के एक पत्थर की चौकी पर एक अपसरा ऐसी सुन्दर इसतिरी की मूरत खड़ी थी—मुखड़ा हंसता हुआ होने पर भी कुम्हलाया हुआ था—उस पर गहरी उदासी झलक रही थी। दोनों आंखें आकास की ओर लगी हुई थीं, जिन से पलपल कलेजे को टुकड़े टुकड़े करती हुई निरासा टपक रही थी। दोनों हाथों में दो कंवल के फूल थे, जो खिलते खिलते कुम्हला गये थे, और देह पर के एकाध गहने और कपड़े इस ढंग से बने थे—जिन के देखते ही यह बात अचानक मुंह से निकलती थी—हा! परमेसर! ऐसों की भी यह गत!!! सर के ऊपर ठीक साम्हने आकास में ऊपर उठते हुये कामिनीमोहन की मूरत बनी हुई थी, जिस के चारों ओर धीरे धीरे अंधियाली घिर रही थी—पर बीच बीच में एक जोति फूटती थी, जो उस अंधियाली को दूर करना चाहती थी, पासही दाहिनी ओर चौकी के नीचे देवहूती की मूरत [illegible] हुई थी, जो अपने हाथ की अंगुली से उस के पांवों पर फूल डाल रही थी।

मैं ने भी सर झुका कर हाथ के फूलों को फूलदेवी के पांवों पर डाला, पीछे कलेजा पकड़े हुये मंदिर के बाहर आया। यहां देवसरूप की बुरी गत थी, वह फूलकुंवर और कामिनीमोहन की चरचा अपने साथियों से कर रहे थे, और बेढब दुखी थे। पीछे वह सरजू पर आये, सूरज को डूबता देखकर कुछ पूजा की, फिर घर की ओर चल पड़े। घर आकर वह

नौ बजे तक आये हुये लोगों से मिलते जुलते रहे, जब नौ बज गया, वह घर के पास के मंदिर में गये, यहां एक घंटे तक उन्हों ने एक पंडित से रामायन की कथा सुनी, पीछे मंदिर की आरती हो जाने पर घर आये। अब दस बज गया था, इस लिये खा पी कर वह सोने गये, हम भी यहीं तक उन के साथ थे, उन के सोने के घर में जाते ही हम उन से अलग हुये॥

देवसरूप बहुत दिन तक इस धरती पर रहे, उन के हाथों देस का, देस के लोगों का बहुत कुछ भला हुआ, देवहूती भी उन की छाया थी, जितने भले काम देवसरूप ने किये उन सब में उस का हाथ था॥

अब इस धरती पर न देवसरूप हैं न देवहूती! पर जस उन का अब तक है। नरक सरग कोई मानता है कोई नहीं मानता, पर जस अपजस सभी मानते हैं। नित्त लाखों लोग इस धरती पर जनमते मरते हैं, पर देवसरूप की भांत जस बटोरनेवाले कितने माई के लाल हैं?

॥ शुभम् ॥

# भूमिका का शुद्धाशुद्धपत्र ।

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १६ | २६ | अलम्बन | अवलम्बन |
| १७ | १७ | के अल्पाधिक | के शब्दों के अल्पाधिक |
| २० | २६ | जो वर्त्तमान | जो शब्द वर्त्तमान |
| २१ | ८ | यथातया | यथातथ्य |
| २३ | ६ | होना हो | होना ही |
| २४ | २२ | विरिया | विरियां |
| २४ | २३ | रहे के | रहे कि |
| ३० | १८ | विपत | वियत |
| ३० | २५ | जोत सी | जोतसो |
| ३१ | १ | पुन | पुन |
| ३१ | १५ | दृष्ट | पृष्ट |
| ३१ | २६ | दसरे | दूसरे |
| ३२ | ४ | लिखते | लिखते हैं |
| ३३ | ५ | वँद | बूँद |
| ३३ | २४ | उर्द | उर्दू |
| ३५ | ८ | में सवैया | में यह सवैया |
| ३६ | ५ | कोई | कोई कोई |
| ३८ | ७ | निसारी | विसारो |
| ३८ | २५ | लोखा है | लिखा है |
| ३८ | ४ | और अभिज्ञता | और उस से अभिज्ञता |

# अधखिला फूल का शुद्धाशुद्ध पत्र ।

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ३ | २३ | धरती हैं | धरती है |
| १० | १८ | कहीं किसो | एक ठौर जो किसी |
| १० | १९ | कहीं अँधियाले | तो दूसरी ठौर अंधियाले |
| ११ | ८ | पवन | पौन |
| १२ | २४ | अनोखा उलझन | अनोखी उलझन |
| १२ | २६ | चैन न पड़ेगी | चैन न पड़ेगा |
| १४ | २५ | इसितिरी | इसतिरी |
| १६ | १ | इसितिरी | इसतिरी |
| १६ | ९,१४ | इसितिरियों | इसतिरियों |
| २५ | १७ | बाबू को घाव | बाबू के घाव |
| २९ | १७ | तोड़ते नहीं | तोड़ा जाता नहीं |
| ३१ | २६ | सूड़ेरों | सुड़ेरों |
| ३४ | ७ | मिट्टी | गिट्टी |
| ३५ | २६ | नीची कर लिया | नीचा कर लिया |
| ३८ | ७ | मुझ से | मेरी ओर से |
| ४० | १८ | काम नहीं करती | काम नहीं करता |
| ४४ | ५ | खोज न मिली | खोज न मिला |
| ४६ | १६ | ह हा ह हा | हा हा हा हा |
| ४७ | ३ | चैन नहीं पड़ती | चैन नहीं पड़ता |
| ४८ | २ | हि | हो |
| ४८ | १७ | चैन पड़ती है | चैन पड़ता है |
| ४९ | १५ | उन की खोज भी नहीं मिलती | उन का खोज भी नहीं मिलता |
| ४९ | २४ | क्या करती हूँ | क्या करता हूँ |
| ५२ | २४ | कोई नहीं | काई नहीं |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ५५ | २० | उस का जी | उन का जी |
| ६३ | २४ | कामिनीमोहन की देवहूती की चाह | देवहूती के लिये कामि मोहन की चाह |
| ६८ | १८ | अड़चनें | अड़चलें |
| ७६ | ७ | बड़े धूम से | बड़ी धूम से |
| ७६ | १० | दूभर | दूभर |
| ७७ | १६ | न खुलीं | न खुले |
| ७७ | १६ | पूरी ढाढ़स हुई | पूरा ढाढ़स हुआ |
| ८२ | २६ | देवसरू | देवसरूप |
| ९० | ९ | नहीं पानी | पानी |
| ९२ | ११ | देवहूती के मौसी | देवहूती की मौसी |
| ९३ | २६ | हिनहनाहट | हिनहिनाहट |
| ९४ | ४ | गीत होने लगा | गीत गाया जाने लग |
| ९५ | २१ | उस के समझ | उस की समझ |
| ९६ | १९ | स्वर | सुर |
| ९९ | ८ | कुछ कपड़ों को पानी में दूर फेंक दिया, और उन्ही को— | हाथ से गिर कर पा बहते हुये कपड़ों |
| ९९ | ९ | दिखला कर उन सबों ने ऐसी बातें कहीं | दिखला कर ऐसी कहीं |
| १०० | २० | लगी थी | लगी थीं |
| १०२ | ३ | बात न मान कर | बात मान कर |
| १०४ | १३ | बातें कही | बातें कहीं |
| १०५ | १० | नरक भी में | नरक में भी |
| १०५ | १४ | फुलगारियां | फुलवाड़ियां |
| १०५ | २५ | धरम गंवाया | धरम नहीं गँवाया |
| १०७ | २० | अपनी मुँह | अपना मुँह |
| ११० | ५ | बात ऐसी हैं | बातें ऐसी हैं |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ११० | ९ | वांदरी | वानरी |
| ११० | १४ | रसोली रहेगी | रसोली रहेंगी |
| १११ | १२ | पती को हो | पती का हो |
| ११४ | ११ | फिर यहां | फिर यह |
| ११५ | १० | पुरुष | पुरुख |
| ११६ | २५ | पुरुष | पुरुख |
| १२० | ८ | छिचिकने में और | छिचिकने और |
| १२२ | २४ | वेस | भेस |
| १२३ | १७ | सब को | सब का |
| १२५ | १२ | चली गई | चली गईं |
| १२५ | १३ | हुई | हुईं |
| १२६ | १४ | वेस | भेस |
| १२७ | १२ | सिख | सीख |
| १२८ | १९ | धीरे धीरे आंखें खोला | उस ने धीरे धीरे आंखें खोलीं |
| १३२ | १७ | लिये दी है | लिये दिया है |
| १३२ | २१, २२ | वसंत पुर परगना हरगांव | वंसनगर परगना हरगांव |
| १३३ | २३ | के आह | की आह |
| १३६ | १६ | सम्हाल करे | सम्हाल करें |
| १३८ | १० | चार वरस | दो वरस |
| १३८ | १८, १९ | वेस | भेस |
| १३८ | २६ | आर | और |
| १३९ | ८ | चार वरस | दो वरस |
| १३९ | ९ | मेरो | मरो |
| १४१ | १ | हायकांडों | हयकांडों |
| १४३ | ७ | चलेने | चलने |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १४४ | २ | समे | समै |
| १४४ | ३ | होचुके थे | होचुका था |
| १४८ | २३ | खुवो लपट | लूवो लपट |
| १४९ | ५ | रुपयै चाहिये | रुपये चाहियें |
| १४९ | १३ | उस क | उस के |
| १५० | २१ | उस का | उन का |
| १५१ | १३, १५, २५ | बेस | भेस |
| १५२ | ४ | बेस | भेस |
| १५२ | ११ | लोगों कें | लोगों को |
| १५३ | ११, १३, १७, १९ | बेस | भेस |
| १५५ | १ | सूरत | सुरत |
| १५६ | १० | उमंगें | चाहें |
| १५६ | २० | वैसाहो | वैसेहो |
| १५८ | १३ | अचरों | अच्छरों |
| १६० | १६ | कंवल | कँवल |
| १६० | २३ | गूँजत | रह रह कर गूँज जाता है |
| १६२ | ७ | यह बात | इस बात को |
| १६५ | ६ | जो | ज्यों |
| १६६ | १२ | जिस के | जिन के |
| १६७ | ११ | लिखा | लिक्खा |
| १६७ | २२ | बेस | भेस |
| १६९ | १६ | दिखलाता | दिखलाई देता |
| १७० | ६ | दुख | सोग |
| १७३ | २६ | पूरब | उत्तर |
| १७४ | २१ | पसोजेगा | कसकेगा |

——०——

## स्त्रीशिक्षा की निम्नलिखित पुस्तकें मुझ से मिलेंगी।

| | | | |
|---|---|---|---|
| (१) | स्त्रीशिक्षा प्रथम भाग | ... | =) |
| (२) | ,, २ य | ... | ।) |
| (३) | ,, ३ य (यंत्रस्थ) | | |
| (४) | सावित्रीचरित्र (पद्य) | ... | =) |
| (५) | ,, (गद्य) | ... | ) |
| (६) | नलदमयंती (यंत्रस्थ) | | |
| (७) | हरितालिका नाटिका | ... | ।) |
| (८) | सतीप्रताप (नाटक) | ... | ।=) |
| (९) | मातृशिक्षा ... | ... | ॥) |
| (१०) | नवनारी (यंत्रस्थ) | ... | ॥) |
| (११) | गार्हस्थ्य पाठ ... | ... | ≡) |
| (१२) | पाकप्रणाली १ म भाग (यंत्रस्थ) | | |
| (१३) | ,, २ य भाग (यंत्रस्थ) | | |

मैनेजर "खड्गविलास" प्रेस बांकीपुर।

# मनोहर उपन्यास ।

उपन्यास के प्रसिद्ध लेखक राय बहादुर बङ्किमचन्द्र चट्टर्जी सी० आइ० ई० के सब उपन्यासों के अनुवाद हो चुके; अनुवादकर्ता हिन्दीभाषा के सुप्रसिद्ध लेखक ब्राह्मण-सम्पादक पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० प्रभुदयाल पांडे, पं० अयोध्या सिंह, बाबू हरिश्चन्द्र तथा उन के प्रिय भ्राता बाबू राधाकृष्णदास जी हैं। इन के उपन्यासों के पढ़ने से यदि नीचे लिखे उपदेश न मिलें तो दाम वापस कर लें।

(१) विषयलीन होने (ऐय्याशी) से क्या फल मिलता है।

(२) पत्नी में नम्रता न हो तो उस का क्या फल होता है।

(३) कुचाली स्त्रियों की क्या गति होती है।

(४) विषयी पुरुष का जीवन कैसा दुःखमय होता है।

(५) स्त्रियों का स्वभाव कैसा होना चाहिये—इत्यादि।

नीचे लिखे हुए उपन्यास छप गये हैं शेष छप रहे हैं।

कृष्णकान्त का दानपत्र से जिल्द (पं० अयोध्या सिंह) १॥)

राज सिंह (पं प्रतापनारायण मिश्र) ॥)

" (बाबू हरिश्चन्द्र) ॥)

इन्दिरा (पं० प्र० ना० मिश्र) ।-)

युगलांगुरीय " " ।)

राधारानी " " ।)

दुर्गेशनन्दिनी (रा० कृ० दास) १॥)

कपालकुंडला (पं० अयोध्या सिंह) १)

मधुमती (पं० रामशङ्कर व्यास रचित) ।)

ठेठ हिन्दी का ठाट (पं० अयोध्या सिंह लिखित) ॥)

रसायन ।)

मैनेजर खड्गविलास प्रेस—बांकीपुर।